

Department of Distance and Continuing Education

University of Delhi

दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय



बी.ए. (प्रोग्राम) सेमेस्टर-II

DSC-4 (Major)

कोर्स क्रेडिट-4

भारत की विदेश नीति

(India's Foreign Policy)

(राजनीति विज्ञान-विभाग)

As per the UGCF - 2022 and National Education Policy 2020



संपादक मंडल

डॉ. शक्ति प्रदायनी राउत

डॉ. शम्भु नाथ दुबे

डॉ. मंगल देव

पाठ्य-सामग्री लेखक

आशीष कुमार ठाकुर, डॉ. स्मिता अग्रवाल,

डॉ. अभिषेक प्रताप सिंह, डॉ. ईशा, चंद्रिमा,

डॉ. दुर्योधन नाहाक, डॉ. सुराय सोरेन

शैक्षणिक समन्वयक

दीक्षान्त अवस्थी

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग

ISBN: 978-81-19169-27-6

प्रथम संस्करण : 2023

ई-मेल : ddceprinting@col.du.ac.in

politicalscience@col.du.ac.in

Published by:

Department of Distance and Continuing Education under
the aegis of Campus of Open Learning/School of Open Learning,
University of Delhi, Delhi-110007

Printed by:

मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय



यह अध्ययन सामग्री स्थायी समिति की दिनांक 08-05-2023 एवं शैक्षणिक परिषद की दिनांक 26-05-2023 के क्रमांक संख्या 1014 द्वारा तत्पश्चात् कार्यकारी परिषद की बैठक दिनांक 09-06-2023 को क्रमांक संख्या 14 {14-1 (14-1-11)} के द्वारा संस्तुत की गई।

- वर्तमान अध्ययन सामग्री की इकाई-II और IV को एन.ई.पी. 2022 के अनुसार पुरानी सी.बी.सी.एस. सामग्री का संशोधित और नया रूप दिया गया है। इकाई-I और III को एन.ई.पी. पाठ्यक्रम के अनुसार नया लिखा गया है।
- स्व-शिक्षण सामग्री (एस.एल.एम.) में वैधानिक निकाय, डीयू/हितधारकों द्वारा प्रस्तावित सुधार/संशोधन/ सुझाव अगले संस्करण में शामिल किए जाएंगे। हालाँकि, ये सुधार/संशोधन/सुझाव वेबसाइट <https://sol.du.ac.in> पर अपलोड कर दिए जाएंगे। कोई भी प्रतिक्रिया या सुझाव ईमेल- feedbackslm@col.du.ac.in पर भेजे जा सकते हैं।



अनुक्रम

क्र.सं.	विषय	लेखक/अनुवादक	पृ.सं.
इकाई-I	भारत की विदेश नीति : अर्थ, निर्धारक तत्त्व और मूल्यांकन	आशीष कुमार ठाकुर अनुवादिका : चन्द्रकला	01
इकाई-II	शीत युद्ध से लेकर शीत युद्ध के बाद के युग तक वैश्विक शक्तियों के साथ बदलते संबंध		
पाठ-1	भारत और अमेरिका भारत और रूस	डॉ. स्मिता अग्रवाल अनुवादिका : लुके कुमारी	20
पाठ-2	भारत और चीन	डॉ. अभिषेक प्रताप सिंह	37
पाठ-3	भारत और यूरोपीयन यूनियन	डॉ. ईशा	52
इकाई-III	भारत और पड़ोस : मुद्दे और चुनौतियाँ	चंद्रिमा अनुवादिका : डॉ. विनी शर्मा	64
इकाई-IV	समकालीन बहुध्रुवीय विश्व में भारत		
पाठ-1	व्यापार, पर्यावरण और सुरक्षा रणनीति के संबंध में भारत की वार्तालाप की शैली	डॉ. दुर्योधन नाहाक अनुवादक : राखी	80
पाठ-2	भारत एक वैश्विक शक्ति के रूप में : संभावनाएँ और चुनौतियाँ	डॉ. सुराय सौरन	97

योगदानकर्ताओं के बारे में

योगदानकर्ता का नाम	पदनाम
चन्द्रकला	सहायक प्रोफेसर, पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज, डीयू
लुके कुमारी	सहायक प्रोफेसर, पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज, डीयू
डॉ. अभिषेक प्रताप सिंह	सहायक प्रोफेसर, देशबुंध कॉलेज, डीयू
डॉ. विनी शर्मा	शोध विद्यार्थी, राजनीति-विज्ञान विभाग, डीयू
राखी	शोध विद्यार्थी, राजनीति-विज्ञान विभाग, डीयू
डॉ. सुराय सौरन	सहायक प्रोफेसर, राजनीति-विज्ञान विभाग, डीयू



भारत की विदेश नीति : अर्थ, निर्धारक तत्व और मूल्यांकन

आशीष कुमार ठाकुर

अनुवादिका : चन्द्रकला

संरचना

- 1.1 उद्देश्य
- 1.2 परिचय
- 1.3 भारत की विदेश नीति के घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय निर्धारक
- 1.4 उद्देश्य और सिद्धांत
- 1.5 चुनौतियाँ/सीमाएँ
- 1.6 निष्कर्ष
- 1.7 अभ्यास प्रश्न
- 1.8 संदर्भ-सूची

1.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी निम्नलिखित को समझने में सक्षम हो जायेंगे—

- विदेश नीति क्या है?
- विदेश नीति क्यों आवश्यक है?
- भारत की विदेश नीति के निर्धारक तत्व क्या हैं?
- भारत की विदेश नीति की विशेषता क्या है?
- भारत की विदेश नीति में परिवर्तन और निरंतरता क्यों आवश्यक है?



- जटिल और लगातार परिवर्तित होते विश्व में भारत को किस प्रकार की विदेश नीति अपनाना चाहिए?
- भारत अपने लोकतंत्र के आदर्श, शांति और अहिंसात्मक मूल्यों को छोड़े बिना यथार्थवादी विदेश नीति में अपनी स्थिति को कायम कैसे रख सकता है?

1.2 परिचय

इक्कीसवीं शताब्दी में विश्व को अनिश्चिताओं, जटिलता, और चुनौतीपूर्ण पर्यावरण के संदर्भ में देखा जा रहा है। इक्कीसवीं शताब्दी में विश्व के समकक्ष ढेरों जटिल मुद्दों में शक्ति विषमता, अव्यवस्था, बहुआयामी रूप से सुरक्षात्मक चुनौती के रूप में उभरे हैं। शीतयुद्ध तथा द्वि-ध्रुवीय व्यवस्था के अंत के साथ, विश्व स्वयं को एक नए क्रम के साथ पुनर्स्थापित करे, अंतर्राष्ट्रीय पटल पर यह माँग उभर रही थी। विश्व में उभरते नए शक्ति ब्लॉक जिसमें क्षैतिज और उर्ध्वाधर दोनों ही प्रकार, शक्ति के तब्दीली की ओर इंगित करते हैं कि या तो यह नेतृत्व को चुनौती देते हैं या फिर एक-ध्रुवीय विश्व का दावा करते हैं। फुकुयामा तर्क देते हैं कि “पाश्चात्य उदारवादी लोकतंत्र” का “सर्वभौमिक” होना चुनौतीपूर्ण है। (फुकुयामा, 1992)

विश्व व्यवस्था में आई महामारी के रूप में अव्यवस्था ने अधिक कारकों/आयामों को उपयोग में लेने में योगदान दिया है, जिनके द्वारा राष्ट्रों को स्वयं को संचालित करना होगा। ऐसी स्थिति में जहाँ यह पूर्णता स्पष्ट होने लगा था कि इस महामारी के अंतर्गत आपसी सहयोग का प्रयास होना चाहिए, परन्तु वहाँ राष्ट्र अपने आंतरिक तथा आत्म-संरक्षण में अधिक जुटे हुए थे।

बदलती राजनीति की प्रकृति में यह सवाल उठाने लगा कि इस बदलते परिदृश्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए राज्य किस प्रकार का व्यवहार अख्तियार करेगा? इसके साथ ही यह बहुत मूलभूत प्रश्न था कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अंतर्गत राज्य की प्राथमिकता क्या होनी चाहिए? (ठाकुर 2022)

गौरतलब है कि राज्य का प्रथम आधार उसकी विदेश नीति होती है तथा वह किसी राज्य के लिए हृदय के समान होती है। विदेश नीति का स्वरूप उसके बहुआयामी और व्यापक रूप में निहित है। भारत की विदेश नीति के निर्माण पर भारतीय सभ्यता विरासत के रूप में अपनी छाप छोड़ती आई है।



भली-भाँति स्पष्ट है कि विश्व के पटल पर भारत का 'विश्व गुरु' बनना एक प्रेरणादायक शक्ति के रूप में उभरा है। भारत के विश्व गुरु विजन के पीछे यह विचार है कि भारत विश्व में अपनी सुदृढ़ता का परिचय अपनी आध्यात्मिकता तथा सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर, विश्व का नेतृत्व करने में प्रस्तुत करेगा। जबकि अब तक विश्व भौतिकवादी आयाम को ही शक्ति का आधार मानता आया है।

अप्पादौराये (1981) तर्क देते हैं कि विदेश नीति प्रतिबद्ध और शक्ति के बीच संतुलन में निहित है। एक देश की विदेश नीति को व्यापक हित तथा पर्याप्त शक्ति के विकास को बढ़ावा देने के अंतर्गत परिभाषित किया जाता रहा। विदेश नीति के अंतर्गत एक राज्य या तो अकेला या समायोजन से अपने हितों की रक्षा करने के तरीकों का चुनाव करता रहा था।

यह अध्याय भारत की विदेश नीति के विकास की रूपरेखा को उजागर करता है, साथ ही भारत की विदेश नीति के निर्माण में महत्वपूर्ण कारकों में— भू-रणनीतिक, सुरक्षा के वैकल्पिक मॉडल, (गैर-पारंपरिक सुरक्षा), तकनीकी, सांस्कृतिक, आर्थिक, नीति निर्माण तथा उसके क्रियान्वयन को समकालीन समय में जानने का प्रयास है। (गुप्ता और वाधवा, 2020)

विदेश नीति की परिभाषा

किसी भी देश की विदेश नीति को उसके हितों को बढ़ावा देने वाली अर्थात् राष्ट्रीय हित में निहित शब्दावली से जाना जाता है। (वाल्ड्ज)

विदेश नीति के निर्माण के दौरान कर्ता अपने राष्ट्रीय हित को ही केंद्र में रखता है। समसमायिक समय में विदेश नीति का निर्माण एक जटिल प्रक्रिया बन गई है।

विदेश नीति की चुनौतियाँ

इस जटिलता के पीछे बहुत से कारक हैं जैसे— वैश्वीकरण के द्वारा, सीमाओं का अंत होना, वैश्विक व्यवस्था में बदलाव अर्थात् विश्व का द्विधुर्वीय से बहुधुर्वीय की ओर बढ़ना, जलवायु परिवर्तन, आतंकवाद।

विदेश नीति का अध्ययन क्यों?

यद्यपि विदेश नीति का अनुसरण जटिल है, इसके बावजूद राज्यों के द्वारा इसे चुनौती के रूप में स्वीकारते हुए आंतरिक और बाह्य दोनों स्तर पर परिवर्तन किये जा रहे हैं। गौरतलब है कि विदेश



नीति का अध्ययन इस परिपेक्ष्य में महत्वपूर्ण हो जाता है।

विदेश नीति निर्माता कौन?

विदेश नीति के निर्माण में विभिन्न स्तर के कर्ताओं की भूमिका है, यह विदेश नीति के निर्माण को अपने स्तर से प्रभावित करते हैं, उदाहरणस्वरूप राज्य और उनकी सरकारें और गैर सरकारी संस्थान।

1.3 भारत की विदेश नीति के घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय निर्धारक

किसी भी देश की विदेश नीति आंतरिक और बाह्य दोनों ही कारकों से प्रभावित होकर निर्मित की जाती है— आंतरिक कारकों में (यथार्थवाद, उदारवाद, रचनात्मक) घरेलू कारक शामिल होते हैं। भारत की विदेश नीति के निर्माण में आधारभूत तत्व के रूप में राष्ट्रीय चरित्र, राजनैतिक परम्पराएँ, भौगोलिक स्थिति, आर्थिक विकास, घरेलू परिवेश, अंतर्राष्ट्रीय परिवेश और सैन्य शक्ति शामिल हैं (बंदोउपाध्याय 1970)

भारत में विदेश नीति का निर्माण

समसमायिक स्थिति में विश्व व्यवस्था के बदलते स्वरूप अर्थात् बढ़ती प्रतियोगिता, जटिल अंतर-निर्भरता, अनिश्चतताओं, बढ़ती अव्यवस्थाओं, वैश्विक शक्ति में विषमता के रूप में फैली हुई है।

मूलभूत प्रश्न यह कि समकालीन समय में उभरती हुई चुनौतियों का भारत की विदेश नीति किस प्रकार से हल निकालने का प्रयास करेगी? परिणामस्वरूप विदेश नीति एक जटिल प्रक्रिया बनकर उभरी है, ऐसे में इस अध्याय में भारत की विदेश नीति में जटिल प्रेक्ष्य वक्रों को इसके विकास और समकालीन समय में बदलाव के संदर्भ में जानने का प्रयास किया है।

21वीं सदी में हो रहे परिवर्तन, विदेश नीति के पुनर्विन्यास की माँग है, जो राज्यों को स्वरूप को द्विपक्षीय, त्रिपक्षीय या बहुपक्षीय की ओर बढ़ने की ओर इंगित कर रहा है। यद्यपि 21वीं शताब्दी में जो परिवर्तन दिख रहे हैं, ऐसी स्थिति में राज्य का विदेश नीति को प्राथमिकता देना अधिक जटिल विषय के रूप में उभरा है।

इसे नकारा नहीं जा सकता कि ऐसी स्थिति में भी भारत अंतर्राष्ट्रीय नियम, आर्थिक स्थिति, सुरक्षात्मक, राजनीति, व्यापार, इन सभी आयामों से अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के निर्माण तथा आदर्श कानूनों में अपनी भागीदारी दिखा रहा। (दासगुप्ता 2015)



ऐसे में भारत की विदेश लोकतांत्रिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के आधार पर विश्व के समक्ष मार्गदर्शन का प्रयास बनकर उभर रही है। विश्व के पटल पर अंतर-निर्भरता का बदलता स्वरूप विदेश नीति के निर्माण में एक चुनौतीपूर्ण शर्त बनकर उभरा रहा है, परिणामस्वरूप किसी भी देश के लिए विदेश नीति का निर्माण जटिल प्रक्रिया बन गयी है। उदाहरणस्वरूप 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का विचार जिसका अर्थ है कि सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है। इस विचार ने साझा निर्यात से प्रेरित (MDGs और SDGs) विकास के लक्ष्य के रूप में अमेरिका को भी प्रोत्साहित किया है।

किसी भी देश की विदेश नीति अपने सन्दर्भ से प्रभावित होती है, भारत अपनी स्वतंत्रता प्रारंभिक वर्षों में विदेश नीति को काफी सीमित दायरे में देख रहा था। स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में भारत कुछ विशिष्ट देशों से संबंध तथा कुछ विशिष्ट अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं पर ही प्रतिक्रिया के संदर्भ में ही नीति निर्माण कर रहा था। भारत की विदेश नीति के निर्माण में मूलभूत तत्वों जैसे राजनीति, प्रशासनिक, घरेलू तथा व्यक्तित्व के अंतर्गत निर्धारित हो रहा था। (बंदोउपाध्याय 1970)

भारत का लोकतंत्र संसदीय व्यवस्था पर आधारित है, इसकी मुख्य विशेषताओं में शक्ति का विभाजन सिद्धांत है, अर्थात् शक्ति कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका में विभाजित है।

जहाँ विदेश नीति का निर्माण तथा क्रियावन्धन कार्यपालिका का कार्य है, प्रधानमंत्री सहित विभिन्न मंत्री और वित्तीय मंत्रालय की सहमति तथा योगदान से ही भारत की विदेश नीति निर्मित की जाती है। (हॉल 2019)

यह महत्वपूर्ण है भारतीय लोगों के बीच एजेंडा के तौर पर प्रमुख मुद्दे में विदेश नीति शामिल नहीं रही है, इसके बावजूद भी भारतीय नेताओं के बीच विदेश नीति हमेशा विवाद का कारण रही है। जैसे प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के काल में भारत चीन मुद्दा, तथा युद्ध में प्रबंधन के संबंध में, इंदिरा गाँधी के काल में भारत बांग्लादेश निर्माण (1971) मनमोहन सिंह के काल में यूएस तथा भारत के बीच नूक्लियर डील के संबंध में समकालीन संदर्भ में विदेश नीति दोनों स्तर अर्थात् संस्थानों और निर्माताओं के लिए जटिल प्रक्रिया के रूप में उभरी है (हॉल 2019)।

महत्वपूर्ण है कि एक घरेलू कारक के रूप में दार्शनिक, सांस्कृतिक विचारधारा, ऐतिहासिक विरासत, भौगोलिक स्थिति के आधार पर भारत दक्षिण एशिया में केन्द्रीय स्थिति में है। शक्ति संसाधन के आधार पर (जनसंख्या, सैन्य क्षमता, आर्थिक, औद्योगिक स्तर) नेतृत्व के आधार पर केंद्रीय सरकार और मंत्रालय का निर्णय निर्माण तथा क्रियावन्धन केंद्र तथा राज्य संबंध, संचार के



साधन, नागरिक समाज, शोधकर्ता, वैज्ञानिक समझ तथा तकनीकी विकास, यह सभी घरेलू तत्व के रूप में शामिल हैं।

बाह्य तत्व के रूप में अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था द्विधुर्वीय, बहुधुर्वीय, शक्ति संतुलन, शक्ति संगठन, क्षेत्रीय संगठन तथा कूटनीति यह सभी विदेश नीति के निर्माण की रूपरेखा बनाने में अपनी भूमिका निभाते हैं।

1.4 उद्देश्य और सिद्धांत

किसी भी देश की विदेश नीति का उद्देश्य राष्ट्र हित में निहित होता है, साथ ही कहें तो उद्देश्य ही विदेश नीति के निर्माण को आकर देता है। विदेश नीति अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जिन साधनों को अपनाती है, उसे सिद्धांत कहते हैं।

हम विदेश नीति का मूल्यांकन उसकी विशेषताओं और उद्देश्य के आधार पर करेंगे, जोकि ऐतिहासिक संदर्भ में अपनाई गयी थी।

भारत की विदेश नीति के विकास के विभिन्न चरण

किसी भी देश की विदेश नीति अपनी निरंतरता और परिवर्तन में ही आंकी जाती है। सुमित गांगुली (2012) ने भारतीय विदेश नीति का विकास तीनों कारक व्यक्तिगत, राष्ट्रीय, व्यवस्था के अंतर्गत देखा है। वह भारतीय विदेश नीति को तीन ऐतिहासिक संदर्भ में विभाजित करते हैं—

पहला काल – 1947 से 1962

दूसरा काल – 1962 से 1991 तक और

1991 से यू पी ए 1

पहला चरण : गांगुली के अनुसार नेहरू जी द्वारा शिल्पकृति किया गया, इसे भारतीय विदेश नीति के 'आदर्शवादी चरण' के रूप में उल्लेख किया जाता है।

दूसरा चरण : भारत की विदेश नीति का अहम चरण है, इसे भारत चीन के युद्ध के बाद, भारत की विदेश नीति का स्वयं को मजबूत बनाने की ओर अग्रसर करने के रूप में देखा जाता है।

तीसरा चरण : शीत युद्ध के बाद भारत की विदेश नीति आर्थिक यथार्थवादिता की ओर



अग्रसित होती है।

समकालीन चरण में, क्या भारत अपनी विदेश नीति के चौथा चरण की ओर अग्रसर है, इसके अंतर्गत भारत न केवल यथार्थवादी सिद्धांत पर टिका है, बल्कि इससे आगे बढ़ते हुए उनसे अंतर्राष्ट्रीय शर्त के अनुसार अन्य उपागमों जैसे रचनात्मकतावाद को भी अपनाया है।

गुट निरपेक्षता और उसके परे : सिद्धांत, नीति और संगतता

यह महत्वपूर्ण है कि भारत की विदेश नीति का जन्म स्वतंत्रता के बाद अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की घटनाओं की मौजूदगी में ही हुआ था। ध्यातव्य है भारत की विदेश नीति के निर्माता अंतर्राष्ट्रीय प्रणालीगत व्यवस्था तथा आदर्शवादी स्थिति के बीच, की स्थिति का रास्ता अपनाते हैं। विश्व की सबसे महत्वपूर्ण घटना शीत युद्ध थी, इसके अंतर्गत दो महाशक्तियों के रूप अमेरिका तथा सोवियत संघ में से किसी एक शक्ति को सहयोग देने की बजाय, भारत ने एक अन्य मार्ग का चुनाव किया। शीत युद्ध की गुटबंदी ने भारत को अपनी विदेश नीति तथा राष्ट्रीय हित के संदर्भ में एक नया परिप्रेक्ष्य प्रदान किया। इसके अंतर्गत भारत ने तृतीय विश्व के देशों एशिया और अफ्रीकी की एकजुटता वाली नीति को महत्व देने पर बल दिया। इस सहयोग की शुरुआती वकालत भारत द्वारा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की गई, कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रादेशिक एकता को एशिया में सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। परिणामस्वरूप 1955 का बाडूंग सम्मेलन जोकि गुट निरपेक्षता की दूरस्थ दृष्टि से प्रभावित होकर एशियाई एकता तथा प्रादेशिक सहयोग की पहल को बढ़ावा देने के लिए किया गया। (ठाकुर 2022)

यद्यपि उस समय में प्रादेशिक स्तर पर शक्ति के विभाजन को लेकर कुछ नुकसान भी थे, दूसरी ओर पी आर सी द्वारा प्रादेशिक स्तर पर भारत की सुरक्षा को खतरे भी मौजूद थे। (गांगुली 2012)

ध्यातव्य है कि भारत की विदेश नीति अपने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से प्रभावित होकर ही बनाई गई, भारत लम्बे समय तक औपनिवेशिकता का शिकार रहा था। विदेश नीति निर्माता के मस्तिष्क में यह साफ था कि भारत की विदेश नीति में स्वायत्तता तथा आत्मनिर्णय को केंद्र में रखा जायेगा। इस प्रकार से भारत ने स्वयं को लोकतांत्रिक तथा प्रभुता सम्पन्न, संप्रभु घोषित करने के लिए, अहस्तक्षेप नीति को अपनाया। भारत के प्रधानमंत्री नेहरू द्वारा निरपेक्षता की नीति को अपनाकर तृतीय विश्व में अपने नेतृत्व को प्रबल किया, साथ ही विश्व की राजनीति में भारत की विदेश नीति में यह एक



अनूठी पहल सिद्ध हुई। यद्यपि गुटनिरपेक्षता के सिद्धांत ने एक ओर द्विधुर्वीय विश्व व्यवस्था को चुनौती दी, इसके साथ ही राजनीति, आर्थिक तथा सांस्कृतिक आधार पर तृतीय विश्व के देशों द्वारा भारत का अनुसरण किया जाना लगा। भारतीय विदेश नीति पर गुट निरपेक्षता का अधिक प्रभाव शीत युद्ध के अंत होने तक रहा।

गांगुली के अनुसार गुट निरपेक्षता की नीति ने भारत को दो प्रकार से योगदान दिया पहला भारत अपनी रक्षा शक्ति खर्चा पर ध्यान दे सका, दूसरा नेहरू द्वारा अपनाई गयी इस नीति के कारण भारत विश्व की द्विधुर्वीय प्रतिस्पर्धा से अपने को दूर रखते हुए अपनी स्वतंत्रता को बनाये रखा।

भारत की विदेश नीति के पहले चरण की विशेषताएँ

भारत की विश्व व्यवस्था में एक अलग पहचान के रूप जहाँ एक ओर बहुस्तरीय संस्थानों में, विशिष्ट स्थान के रूप में हुई, इसके साथ में संयुक्त राष्ट्र में शांति स्थापना के लिए बढ-चढ कर भागीदारी की।

यहाँ भारत ने दो दिशाओं में अपनी भूमिका निभाई है—

1. भारत द्वारा गुट निरपेक्षता का नेतृत्व
2. उपनिवेशिकरण की प्रक्रिया में भारत की अग्रणी भूमिका

ये बदले रूप में वैश्विक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तरों पर प्रकट हुए (गांगुली 2012)

भारत की विदेश नीति के प्रथम चरण की प्रमुख विशेषताओं में परमाणु अप्रसार संधि तथा संयुक्त राष्ट्र को पाक के मुद्दे पर शांतिपूर्ण वार्ता प्रस्ताव, प्रादेशिक विवाद पर शांतिपूर्ण वार्ता को शामिल करना था। साथ ही साथ विउपनिवेशिकरण को गुट निरपेक्षता के माध्यम से लाने पर बल दिया, तथा सैन्य व्यवस्था पर सीमित खर्च को बढ़ावा देने पर जोर दिया गया।

1962 के बाद के चरण में भारत काफी व्यावहारिक पक्ष पर जोर दे रहा था— जैसे सैन्य क्षेत्र में आधुनिकीकरण को बढ़ावा। परन्तु गुटनिरपेक्षता भारत की विदेश नीति का पथ प्रदर्शक के रूप में वैश्विक प्रादेशिक, राष्ट्रीय स्तर पर अपनी महत्ता बनाये हुए था। इस चरण में भारत की विदेश नीति में कुछ विशेष कारक थे, जैसे 1966 में ताशकंद समझौता, 1974 इंदिरा गाँधी द्वारा प्रथम बार परमाणु परीक्षण तथा 1971 में इंडो-सोवियत संधि।



सैन्य तौर भारत की बढ़ती क्षमता को भारत की विदेश नीति के विमर्श में बदलाव की शुरुआत के रूप में देखा गया। यहाँ एक ओर भारत तृतीय विश्व के देशों की स्वतंत्रता के लिए एक शक्ति बनकर उभार रहा था, वहीं दूसरी ओर प्रतियोगिता के दौर में विश्व के स्तर पर सैन्य तत्परता के महत्त्व को उजागर कर रहा था। यद्यपि उस समय भारत अपनी आर्थिक वृद्धि में असफल होने के कारण विश्व स्तर एक शक्तिशाली रूप में नहीं उभर पाया और साथ ही कूटनीति स्तर पर कुछ सीमाओं ने भी बंधन का कार्य किया।

तीसरे चरण का प्रारंभ ही शीत युद्ध के अंत से हुआ, विश्व के परिवेश में आए परिवर्तन ने भारत की गुट निरपेक्षता पर सवाल खड़ा किया। सवाल यह था कि विश्व व्यवस्था से द्विधुर्वीयता के अंत बाद गुट निरपेक्षता किसके लिए?

गौरतलब है कि विश्व व्यवस्था में आये बदलावों में

1. सोवियत संघ का विखंडन तथा
2. खाड़ी युद्ध से भारत में वित्तीय संकट 1991

भारतीय की विदेश नीति के उद्देश्यों तथा हितों को नयी दिशा प्रदान की। इसके साथ ही साथ भारत ने अपनी अर्थव्यवस्था में भी बड़े परिवर्तन किये भारत ने लाइसेंस कोटा परमिट नीति को खत्म करके, अपनी अर्थव्यवस्था को वैश्विक संस्थानों के निवेश के लिए खोलने की नीति को अपनाया, अब भारत में उदारवादी, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की नीतियों को अपनाया गया। ध्यातव्य है कि शीत युद्ध के अंत के बाद अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर घटित होने वाली घटनाओं ने भारत की विदेश नीति में विकल्पों की विविधता को बढ़ावा दिया। अब भारत की विदेश नीति के स्वरूप को व्यापक तथा बहुआयामी बनाने के प्रयास में भारत के कूटनीतिज्ञों ने पाश्चात्य देशों विशेष रूप से अमेरिका से संबंध के लिए हाथ बढ़ाया। दक्षिण पूर्व एशिया की तरफ विदेश नीति निर्माताओं ने 'लुक ईस्ट नीति' के अंतर्गत आर्थिक निवेश के लिए कदम बढ़ाया। विदेश नीति निर्माता ने अपने संबंधों को चीन से भी सुधारने का प्रयास किया। भारत ने पाकिस्तान के साथ जातीय धार्मिक विद्रोह के बावजूद खराब रिश्तों को सुधारने का प्रयास किया। भारत के पड़ोसी देशों से सुरक्षा का खतरा या अन्य कारक को ध्यान में रखते हुए भारत को परमाणु सम्पन्न देश बनाने के साथ अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में शक्ति की अवधारणा के नये उपागम के रूप में प्रस्तुत किया।

समकालीन चरण को क्या मैं चौथा चरण कह सकता हूँ, इस चरण में भारत को अपने



यथार्थवादी सिद्धांत के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय मूल्य गढ़ने वाले अन्य उपागम के रूप में रचनात्मकवाद को अपनाने पर बल दिया है।

(सी. राजा मोहन 2003) भारत की विदेश नीति शीत युद्ध के अंत के बाद एक ऐसे विकास पर बल देती हैं जोकि समय की माँग थी और सवाल यह कि क्यों उत्तर शीत युद्ध भारत की विदेश नीति परिवर्तन के दौर से गुजर रही है? वह भारत द्वारा अमेरिका को आतंकवाद के विरोध में समर्थन को विदेश नीति में परिवर्तन और निरंतरता से जोड़कर देखते हैं, परिणामस्वरूप इसी को वह भारत की विदेश नीति का परिवर्तन के दौर से गुजरना कहते हैं। मोहन का विचार है कि 21वीं सदी में इसी कारण से भारत की विदेश नीति परिपक्व तथा स्वयं – आत्मनिर्भर होकर सशक्त रूप में उभरी है।

अंतर्राष्ट्रीय वास्तविकताओं के साथ घरेलू वास्तविकताओं ने भी विदेश नीति में बदलाव में अपना योगदान दिया। उत्तर शीत युद्ध भारत की दलीय व्यवस्था, एकदलीय से बहुदलीय व्यवस्था की ओर बढ़ी तथा गठबंधन सरकारों की शुरुआत हुई। इसके साथ ही धर्मनिरपेक्षता को पुनः परिभाषित करना, अर्थव्यवस्था में वैश्वीकरण का दौर, सोवियत संघ का बिखराव, खाड़ी संकट सभी ने विदेश नीति को एक नया आयाम दिया है। (मोहन 2003)

भारत की विदेश नीति के निर्माण में समकालीन विकास और चुनौतियाँ : 2014 से अब तक

महत्वपूर्ण है कि 2014 में भारत की विदेश नीति को प्रधानमंत्री मोदी के नेतृत्व में एक नयी दिशा में प्राप्त हुई, 2014 में मोदी लहर 'TSU NAMO' ना केवल प्रत्यक्ष रूप से भाजपा की चुनाव में व्यापक विजय के रूप व्यक्त होती है, बल्कि इससे भी कहीं ज्यादा विदेश नीति में बदलावों के रूप में इसकी छाप दिखी जा सकती है। नई सरकार के समक्ष यह प्रमुख प्रश्न के रूप में खड़ा था कि वह किस प्रकार से बदलती विश्व व्यवस्था में स्वयं को खड़ा कर पायेगी?

पंचशील से पंचामृत तक

भारत और चीन के कूटनीतिक संबंध 1950 के दशक में उजागर हुए थे, इस संबंध में महत्वपूर्ण आधार 1954 का पंचशील समझौता था। (पन्त 2016)

पंचशील : शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के 5 सिद्धांत

शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के पाँच सिद्धांत जिन्हें पंचशील कहा जाता है, यह भारत तथा चीन के बीच



द्विपक्षीय कूटनीति संबंध पर आधारित थे।

1. संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता के आपसी सम्मान
2. आपसी गैर आक्रामकता
3. एक दूसरे के मामले में गैर हस्तक्षेप
4. सम्मान तथा पारस्परिक लाभ
5. शांति पूर्ण सह-अस्तित्व

भारत एक 'स्विंग स्टेट के रूप में'/उभरी विश्व व्यवस्था को आकार देने वाले स्विंग स्टेट के रूप में भारत की भूमिका

उभरी विश्व व्यवस्था को आकार देने वाले स्विंग स्टेट के रूप में भारत की भूमिका भारत के उदय और भारतीय विदेश नीति के पुनर्निर्माण के साथ मेल खाती है। भारत की विदेश नीति में दार्शनिक मूल्य लोकतंत्र, सम्पन्नता, अहिंसा, आध्यात्मिकता, शांति, मानवता, गरिमा, संस्कृति में निहित है। भारत की विदेश नीति, विश्व के स्तर पर औपनिवेशिकवाद के विरुद्ध, गुटनिरपेक्षता और रंग भेद के विरुद्ध जैसे सिद्धांत के लिए प्रतिबद्ध है। वर्तमान में भारत अपनी लोकचार तथा आर्थिक सम्पन्नता के आधार पर विश्व के स्तर पर मजबूती से खड़ा है। (राणा 1970)

समकालीन दौर में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लगातार परिवर्तन, अनिश्चितता और अस्थाई परिस्थितियों के उभरने के बावजूद भारत इन अंतर्राष्ट्रीय चुनौतियों का सामना करने में काफी हद तक सशक्त हो गया है। आज भारत ने विश्व स्थिरता, समावेश, सततता, मनुष्य के रहने के लिए स्थान के लिए, खुले रूप से महत्वपूर्ण भूमिका बनाई है। समकालीन समय में भारत अपनी व्यापक पहुँच, विशालतम संसाधन और क्षमता होने के आधार पर अपनी सुदृढ़ पहचान बना रहा है। खास तौर पर विदेश नीति निर्माता के द्वारा अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत की पहुँच को बढ़ाने के लिए लगातार प्रयास किया जा रहा है। वर्तमान में भारत की महत्ता यह है कि विश्व स्तर पर शक्ति के पदसोपन को बदलाने तथा इसे निर्धारित करने की क्षमता रखता है। यह बड़ी ही गर्व की बात है कि महाशक्तियों की सूची में भारत का 6वाँ स्थान है, जिसमें अमेरिका सर्वप्रथम स्थान के साथ है, तथा चीन और जापान संयुक्त रूप में इस लिस्ट में दूसरे स्थान पर हैं। (ठाकुर 2022)

यह महत्वपूर्ण है कि भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र, अपनी सभ्यता के लोकचारों के



साथ, बढ़ती, सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के साथ उभर रहा है। अपनी भू-राजनीतिक महत्ता के लिए जाना जाता है तथा दक्षिण एशिया के देशों में भारत केन्द्रीय पर स्थान है। यह सभी पहलू मिलकर आज भारत को एक अनूठी पहचान दे रहे हैं। आज विश्व के बहुत से देश भारत के साथ राजनीतिक, आर्थिक, सुरक्षात्मक, सांस्कृतिक संबंधों को साँझा करना चाहते हैं। भारत एक स्विंग स्टेट के रूप में वैश्विक राजनीति में शक्ति संतुलन बनाये रखने में अग्रणी भूमिका निभा रहा है। भारत ने अपने इच्छा तथा क्षमता दोनों के आधार मुक्त, खुलेपन तथा समावेश की नीति के लिए अपने कदम आगे बढ़ाये हैं। भारत Quad रणनीति के अंतर्गत हिन्द-प्रशांत तक अपनी पहुँच को शामिल कर रहा है। भारत मध्यपूर्व एशिया में राजनीतिक आधुनिकीकरण के लिए कार्यरत है। आज भारत वैश्विक अर्थव्यवस्था में 5वाँ स्थान रखता है, ऐसा अनुमान है कि आने वाले दशक में भारत तृतीय जीडीपी वाला देश बन जायेगा।

भारत की खास विशेषताओं के रूप में देखा जा रहा है कि स्वयं भारत सहायता प्राप्तकर्ता की भूमिका से सहायता प्रदान करने वाले भूमिका में आज खड़ा हो गया है। ऐसे में भारत ने विभिन्न संगठनों जैसे जी-20, ए.आई.आई.बी., नयी विकास बैंक और ब्रिक्स जैसे संगठनों को अपनी खासियत से प्रभावित किया है। भारत के मुख्य गुण के रूप में संयुक्त राष्ट्र में उसकी आवाज मुखर रूप में उभरी है। यहाँ भारत लगातार विश्व स्तर पर जी-4 (भारत, जापान, जर्मनी और ब्राजील) के लिए सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यों के रूप में इनकी प्रबल दावेदारी के लिए आवाज उठा रहा है। (मुनि 2014)

भारत ने प्रादेशिक संगठनों जैसे आसियान, शंघाई कार्पोरेशन संगठन, पूर्व एशिया समिट में सदस्यता और अफ्रीकन यूनियन इन सभी संगठनों में अपने महत्वपूर्ण कदम, तथा प्रबल छाप छोड़ी है। भारत ने अपनी सुरक्षा क्षमता का 'भारतीयकरण' करने पर बल दिया, इसके अंतर्गत सुरक्षा कूटनीति में विविधता को बढ़ावा देते हुए संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, इजराइल और फ्रांस के साथ संबंध जोड़े हैं। गौरतलब है कि भारत ने अपनी रणनीति के अंतर्गत पश्चिम एशिया देशों, मध्य एशियाई देशों, पूर्व एशियाई देशों को भी शामिल किया है, साथ ही आसियान प्रदेश में शांति और स्थिरता लाने वाले देश के रूप में अपनी अलग पहचान भी बनाई है। (ठाकुर 2022)

भारत की विदेश नीति के स्तर पर सुरक्षा संगठन शंघाई कार्पोरेशन में सदस्य बनना एक उल्लेखनीय कदम है। (दि हिन्दू 2017)



भारत का बहुपक्षीय सिद्धांत में बढ़ते विश्वास ने उसे वैश्विक शासन संस्थाओं के करीब लाया है, जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ और जी-20। भारत ने इंडो-पैसिफिक समझौते के द्वारा एक नये प्रवाह को बढ़ाया है, साथ ही यह एक महत्वपूर्ण कदम है कि अमेरिका द्वारा एशियाई देशों को प्राथमिकता के रूप में देखा जा रहा है। भारत को एक 'Natural allies' के रूप पहचान मिली है, यह उत्तर शीत युद्ध इच्छित देशों के लिए अपने हितों को बढ़ावा देने की ओर कदम है। उत्तर शीत युद्ध के बाद भारत की विदेश नीति द्वारा मानव सुरक्षा, प्राकृतिक त्रासदी प्रबंधन, पर्यावरण, आधारभूत संरचना, समुद्री सुरक्षा, परमाणु ऊर्जा और आर्थिक विकास इन सभी व्यापक क्षेत्रों में अपना फैलाव किया गया है। भारत और अमेरिका के बीच बदलते कूटनीति संबंधों के कारण भारत ने स्वयं को अमेरिका के रणनीतिक साझेदार के रूप में पहचान दी है। समकालीन समय में यह सभी पहलू भारत की विदेश नीति में आमूल-चूल परिवर्तन का प्रतीक है। (मान सिंह 2007)

वर्तमान में भारत अपनी सुरक्षा के क्षेत्र में व्यापक रूप से बढ़ते हुए समुद्री क्षेत्रों में समावेश की ओर कार्यरत है। साथ ही इसमें अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर रोकथाम, पर्यावरण सुरक्षा और सामूहिक विनाश के हथियारों के प्रसार पर रोकथाम को भी समाहित किया है। गौरतलब है कि भारत द्वारा समुद्री सुरक्षा एक प्रकार से आर्थिक वृद्धि, भू-राजनीतिक आधार पर भारत की सुरक्षा की दृष्टिकोण से अग्रणी कदम है।

नई अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में भारत बेहतर आर्थिक विकास, राजनीतिक स्थिरता के कारण आकांक्षी और एक बड़ी शक्ति के रूप में उभरा है। महामारी के बाद की दुनिया में भारत के महत्व को वैश्विक शासन संस्थानों के भीतर उसके कद बढ़ाया है।

महत्वपूर्ण सवाल यह है कि भारत वैश्विक प्रशासन संस्थानों की सदस्यता, जिसमें संयुक्त राष्ट्र, जी-20, पूर्व एशिया समिट के माध्यम से उसे दिए गये अवसर का उपयोग कैसे करता है? भारत ने अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी स्थिति को बढ़ाने की संकल्प के मकसद के साथ संस्थानों के साथ काम करने की नकल की है। हालाँकि भारत की विदेश नीति को बनाने की प्रक्रिया में अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली को मजबूत करने पर ध्यान देने के साथ-साथ उसके दृष्टिकोण में लचीलापन है। (ठाकुर 2022)

भारत नियमों के साथ विशिष्ट खुलेपन से प्रेरित, भारत-प्रशांत क्षेत्र और आसियान केन्द्रीयता के सिद्धांत के अंतर्गत सभी देशों की बहुमुखी संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता के नियमों को भी साथ-



साथ एक विशिष्ट रूप से संचालित करने के लिए प्रतिबद्ध है। आसियान केन्द्रीयता का सिध्दांत, तथा हिन्द-प्रशान्त क्षेत्र में क्वैड (Quad) समझौते के तहत हिन्द-प्रशांत क्षेत्रों के देशों को टीके प्रदान करने में स्पष्ट रूप से प्राथमिकता दी है।

मई 2019 में, अमेरिका, भारत, जापान और फिलिपिन्स ने दक्षिण चाइना सागर में नौसैन्य क्षमता को बढ़ावा देने के लिए संयुक्त उपस्थिति का प्रदर्शन किया है। इस प्रकार का यह पहला समझौता है जोकि हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में नौ सैन्य पर एक जैसी समझ के बीच समन्वय को उजागर करता है, यह अपने आप में सबसे महत्वपूर्ण बहुपक्षीय समझौतों में से एक है।

भारत नरम पावर क्षमता के क्षेत्र में बड़ी संभावनाएँ रखता है, जिससे अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को आकार देने में सहायक उपकरण मिलता है। समकालीन दुनिया में भारत के कद को आकार देने के लिए निर्धारक तत्व भारत की समृद्ध सभ्यता, लोकचार, सांस्कृतिक दर्शन, आध्यात्मिकता, विशाल आबादी और भारतीय प्रवासी हैं।

हालाँकि भारत की विदेश नीति को मोटे तौर पर उसकी कार्यात्मक आवश्यकता, अंतर-निर्भरता, पारस्परिक लाभ और पहचान निर्माण के द्वारा दिशा-निर्देशित होकर आकार दिया गया है। परन्तु समकालीन समय में, भारत की विदेश नीति एक जैसी समझ से प्रेरित मुद्दे, पर आधारित संगठनों को बनाने की ओर पहलकदमी को बल दे रही है। (मोहन 2019)

1.5 चुनौतियाँ/सीमाएँ

1. **समस्यागत राजनीतिक विकास में पड़ोसी देशों की भूमिका**— चीन का उदय, पाक का मुद्दा, आतंकवाद, पलायन, नागरिक युद्ध, राजनीतिक अस्थिरता।

विश्वगुरु के रूप में – वैश्विक नेता बनने की भारत की आकांक्षा ने देश में शांति और स्थिरता बनाए रखने के लिए अपने पड़ोसी देशों को प्रतिबंधित करना आवश्यक हो गया। भारत की विदेश नीति बनाने की मूलभूत समझ, में यह एक बदलाव का प्रतीक है कि भारत स्वयं को विश्व गुरु बनाने की इच्छा रखता है, न कि वैश्विक शक्ति।

2. **सुरक्षा परिषद् सुधार के मुद्दों पर गतिरोध**— चार्टर प्रावधान, आकर और विस्तार की प्रकृति, क्षेत्रीय के संबंध में विभिन्न प्रस्तावों पर असहमति प्रतिद्वंद्विता और राजनीति में सुधारों को



लेकर मुख्य रूप से स्थायी पाँच सदस्य (P5) और वीटो पॉवर ने सुरक्षा परिषद् के सुधारों को कठिन बना दिया है।

3. भारत के लिए जलवायु परिवर्तन, अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में सुधार जैसे मुद्दों पर विचलन (यूएनएससी, आईएमएफ के रूप में) और बहुपक्षीय मंच के भीतर व्यापक चिंता का कारण रहा है। समकालीन समय में, भारत की विदेश नीति एक जैसी समझ के साथ मुद्दे पर संगठन की माँग का संरेखण करती है। (मोहन 2019)
4. **महामारी (कोविड-19)**— महामारी ने हमारी विदेश नीति को नई दिशा देने के लिए प्रेरित किया है, ताकि विभिन्न प्रकार के मुद्दों को संबोधित किया जा सके। आज विश्व जिन चुनौतियों का सामना कर रहा है उनके लिए हमें रचनात्मक सुधार करने की आवश्यकता है, जैसे कि जलवायु रणनीतियों को मजबूत करें। इसे मध्य नजर रखते हुए भारत ने अपनी आपूर्ति श्रृंखला के विविधिकरण तथा घरेलू विनिर्माण को मजबूत करने के विचार को बढ़ावा दिया है। (ठाकुर 2022)
5. **एशिया में बदलता सामरिक परिदृश्य**— हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में अधिक स्थिरता सुनिश्चित करने की माँग, के अलावा यह महत्वपूर्ण है कि हिन्द-प्रशांत क्षेत्र की अवधारणा के आस पास के विवाद अपने आप में समस्याग्रस्त है। इंडो-पैसिफिक शब्द का प्रयोग विभिन्न देशों द्वारा विभिन्न संदर्भों में परिभाषित किया जाता रहा है, जिसका अर्थ विभिन्न देशों के लिए अलग-अलग है। संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, भारत और ऑस्ट्रेलिया तथा आसियान देशों ने हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में अपनी-अपनी अवधारणा प्रस्तुत की है। इंडो-पैसिफिक की अवधारणा के संबंध में कोई एकरूपता नहीं है, भारत की इंडो-पैसिफिक अवधारणा आर्थिक समृद्धि, तथा बहुपक्षीय सहयोग पर जोर देती है।

समकालीन समय में युद्ध और सुरक्षा के मुद्दों की विविध और बदलती धारणा के साथ अंतरिक्ष से लेकर डिजिटल तक की महत्वपूर्ण भूमिका है, ऐसे में भारत की विदेश नीति के निर्माण में अहम सवाल यह है कि विकल्प क्या है, जो भारत टिकाऊ, समावेशी और मानवीय दुनिया को प्रदान कर सकता है?

पंचामृत : समकालीन समय में भारत की विदेश नीति के 5 स्तंभ

पंचामृत का अर्थ हिन्दू पूजा के दौरान पाँच प्रकार के खाने का मिश्रण में निहित है, भारत की विदेश



नीति में 5 स्तम्भ के अंतर्गत पंचामृत दृष्टिकोण में निहित है—

- 1) **सम्मान** - गरिमा और सम्मान
- 2) **संवाद** - व्यापक समझौता और वार्तालाप
- 3) **समृद्ध** - सांझी सम्पन्नता
- 4) **सुरक्षा** - प्रादेशिक और वैश्विक सुरक्षा
- 5) **संस्कृति एवं सभ्यता** - सांस्कृतिक और सभ्यता का जुड़ाव (हॉल 2019)

2014 में मोदी सरकार के आने के बाद भारत ने 'आस पड़ोस पहले' पर प्राथमिकता को जोर दिया। (हॉल 2019) अपनी विदेश नीति में विकल्पों की विविधता के 'लिंग वेस्ट नीति' पर ध्यान केन्द्रित करके पश्चिम एशिया के साथ और अधिक जुड़ाव शुरू किया। 'लुक ईस्ट' नीति को अधिक जीवंत बना कर पूर्वी एशियाई देशों के साथ अपने जुड़ाव को पुनर्जीवित किया।

भारत ने अपने समृद्ध संस्कृति, आध्यात्मिकता और सभ्यता को ध्यान में रखते हुए अपनी विदेश नीति में नरम पॉवर को अपनाया है। विदेश नीति में नए दृष्टिकोण को मोदी सरकार द्वारा वैश्विक स्तर पर भारत की पहचान तथा कद को बढ़ाने के लिए अपनाया गया। पंचामृत के माध्यम से भारत ने न केवल एक मजबूत जिम्मेदार शक्ति, बल्कि दुनिया में एक सम्मानित शक्ति भी बनने को तैयार है।

अतीत के 'वैचारिक बोझ' को एक तरफ रखते हुए, नीति को साकार व्यावहारिकता में परिवर्तित करने पर जोर दिया जा रहा है। प्रधानमन्त्री के 'परिवर्तनीय नेतृत्व' के तहत विदेश नीति बनाने में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भारतीय समाज और भारत की विदेश नीति दोनों में बदलाव की दृष्टि (vision) रखते हैं, लेकिन इसके साथ ही भारत अपनी 'सभ्यता संबंधी लोकाचार' से हट कर अपनी विदेश नीति को नहीं देखता है बल्कि इसे अपनी नीति में समाहित करने पर पुरजोर दिया है। (हॉल 2019)

1.6 निष्कर्ष

भारत और भारत की विदेश नीति की पुनः खोज 'स्विंग राज्य' के रूप में भारत की भूमिका, उभरती हुई विश्व व्यवस्था को आकार देने से मेल खाती है। भारत के विदेश नीति की दार्शनिक नींव लोकतंत्र के आदर्श, अहिंसा, आध्यात्मिकता, शांति, मानवता, गरिमा, संस्कृति और सभ्यता विश्व के मंच पर



उपनिवेशवाद-विरोधी, गुट-निरपेक्षता और नस्लवाद-विरोधी सिद्धांत के प्रति प्रतिबद्धता में उजागर होती है। (राणा 1970)

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि राज्यों का व्यवहार ना केवल उनकी आर्थिक क्षमता से आकार लेता है, बल्कि उन मानदंडों से भी आकार लेता है, जो कि राज्य के आचरण में मौजूद हो, यह विदेशी संबंधों में बदलाव लेने में योगदान देते हैं। (पीटर काटजैस्टिन 1996 दि कल्चर ऑफ नेशनल सिक्यूरिटी)

समकालीन समय में, भारतीय विदेश नीति निर्माण में भारत ने अपनी सभ्यतागत विरासत को ध्यान में रखते हुए 'प्रेरणात्मक शक्ति' के रूप अपनी पहचान बनाने पर जोर दिया, जो कि 'विश्व गुरु' के विचार के साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में परिलक्षित हुआ है। भारत की विदेश नीति में नए दृष्टिकोण के रूप मोदी सरकार के द्वारा पंचामृत के माध्यम से भारत ना केवल एक मजबूत शक्ति बल्कि एक समभाव के रूप में दुनिया को एक करने को तैयार है। भारत की विदेश नीति का यह नया दृष्टिकोण वैश्विक स्तर पर भारत के कद को बढ़ाने की ओर महत्वपूर्ण कदम है।

दुनिया भर के लोग विश्व में फैली अनिश्चित तथा अस्थिरता से प्रभावित हो रहे हैं, ऐसे में भारत अपनी 'सभ्यतागत लोकाचार' और भौतिक क्षमता की समृद्धि के बल पर इन चुनौतियों का हल करने में सक्षम बन कर अपनी विदेश नीति का निर्माण कर सकता है।

महामारी के बाद की दुनिया में आर्थिक और सुरक्षा का क्रम बदलने से विश्व स्तर पर अधिक जटिलता आई है, अनिश्चितता और अव्यवस्था के दौर में भारत के बढ़ते विकास ने दुनिया को भारत को एक आशा के रूप देखने के लिए प्रेरित किया है। भारत सुशासन की व्यापक धारणा में विश्वास करते हुए "वसुधैव कुटुम्बकम्" या पूरी दुनिया को एक परिवार के रूप में जोड़ने का प्रयास है। महत्वपूर्ण है कि भारत एक 'विश्व गुरु' बनने की इच्छा रखता है न कि केवल एक वैश्विक शक्ति जो विदेश नीति की बुनियादी समझ में बदलाव को चिह्नित करता है।

1.7 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय विदेश नीति के मुख्य निर्धारक तत्वों का विमर्शात्मक विश्लेषण कीजिए?
2. समसामयिक समय में भारतीय विदेश नीति के निर्माण में सिद्धांतों तथा उद्देश्यों का विश्लेषण कीजिए?



3. भारत की विदेश नीति के अंतर्गत निरंतरता और परिवर्तन दोनों की व्याख्या कीजिए।
4. क्या आप इससे सहमत हैं कि वर्तमान समय में विदेश नीति का निर्माण जटिल है? इसे भारत की विदेश नीति के संदर्भ में व्याख्यायित कीजिए।

1.8 संदर्भ-सूची

- Appadorai, A. (1981). *The Domestic Roots of India's Foreign Policy*, New Delhi: Oxford University Press.
- Bandyopadhyaya, J. (2003). *The Making of India's Foreign Policy*, New Delhi: Allied Publishers.
- Choudhury, S.R. (2015). "India-Japan relations: the economic advantage". *Indian Foreign Affairs Journal*, 10(3), 268-83.
- Dixit, J. N. (2010). *India's Foreign Policy and its Neighbours*, New Delhi: Gyan Publishing House, 2010.
- Dubey, M. (2007). *India's Foreign Policy*, Hyderabad: Orient BlackSwan.
- *India's Foreign Policy and its Neighbours*, New Delhi: Gyan Publishing House, 2010.
- Dubey, M. (2007). *India's Foreign Policy*, Hyderabad: Orient BlackSwan.
- Dutt, V. P. (2009). *India's Foreign Policy in a Changing World*, New Delhi: Vikas.
- Fukuyama, F. (1992). *The End of History and the Last Man*.
- Ganguly, S. (2012). *India's Foreign Policy: Retrospect and Prospect*, New Delhi: Oxford University Press.
- Gupta, A. & Wadhwa, A. (2020). *India's Foreign Policy Surviving in a Turbulent World*, New Delhi: Sage Publications.
- Hall, I. (2019). *Modi and the Reinvention of Indian Foreign Policy*, Great Britain: Bristol University Press.



- Mansingh, L. (2007). India-Japan Relations. *Institute of Peace and Conflict Studies*.
- Mohan, C. (2006). "India and the Balance of Power", *Foreign Affairs*, 85 (4): 17-32.
- Muni, S. D. (2014). "India and the United Nations". In R. Beri, and A. Anant, *United Nations Security Council Reform Perspectives and Prospects*. New Delhi: IDSA.
- Pande, A. (2017). *From Chankya to Modi: The Evolution of India's Foreign Policy*, New Delhi: Harper.
- Pant, H. (2016). *Indian Foreign Policy: An Overview*, Manchester: Manchester University Press.
- Rana, S. (1970). "The changing indian diplomacy at the United Nations". *International Organization*, 48-73.
- Sikri, R. (2013). *Challenge and Strategy: Rethinking India's Foreign Policy*, New Delhi: Sage Publications.
- Thakur, A. (2022). "Mapping the Multilateral Engagements: United Nations, G20, and the East Asia Summit". In S. Roy Choudhury, S. Thankachan, and P. Bakshi, *India-Japan Relations @ 70*. New Delhi: KW Publishers.
- Waltz, KN. (1993). The emerging structure of international politics. *International Security*, 18(2), 44-79



इकाई-II : शीत युद्ध से लेकर शीत युद्ध के बाद के युग तक वैश्विक शक्तियों के साथ बदलते संबंध

पाठ-1 : भारत और अमेरिका भारत और रूस

लेखक : डॉ. स्मिता अग्रवाल

अनुवादिका : लुके कुमारी

संरचना

- 1.1 उद्देश्य
- 1.2 परिचय
- 1.3 भारत-अमेरिका संबंध
 - 1.3.1 शीत युद्ध के दौर में भारत-अमेरिका संबंध
 - 1.3.2 कश्मीर मुद्दा
 - 1.3.3 पाकिस्तान-भारत और अमेरिका के बीच एक मिश्रित संबंध
 - 1.3.4 शीत युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत-अमेरिका द्विपक्षीय संबंध
 - 1.3.5 11 सितंबर के बाद भारत-अमेरिका संबंध
 - 1.3.6 उभरता हुआ भारत : अमेरिका के लिए एक रणनीतिक विकल्प
- 1.4 भारत-रूस संबंध
 - 1.4.1 भारत-सोवियत संबंधों की एक ऐतिहासिक झलक
 - 1.4.2 यू.एस.एस.आर. का पतन और भारत-रूस संबंधों के बीच नए विवाद
 - 1.4.3 भारत-रूस संबंधों में नए युग का उदय
 - 1.4.4 रक्षा संबंध
 - 1.4.5 असैन्य परमाणु संबंध
 - 1.4.6 आर्थिक संबंध



- 1.4.7 वैश्विक साझेदारी
- 1.5 निष्कर्ष
- 1.6 अभ्यास प्रश्न
- 1.7 संदर्भ-सूची

1.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी—

- भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच शीत युद्ध के बाद के द्विपक्षीय संबंधों के साथ-साथ 11 सितंबर के हमलों के बाद और संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए एक रणनीतिक विकल्प के रूप में बढ़ते भारत को समझेंगे।
- भारत-सोवियत संबंधों, यू.एस.एस.आर. के पतन के बाद के संबंधों और उसके बाद हुए नए विभाजनों के बारे में भी जानेंगे।

1.2 परिचय

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में वैश्विक राज्यों के मध्य अंतर्निर्भर संबंध हैं। प्राचीन काल से सभी राज्यों तथा सभ्यताओं द्वारा आर्थिक संबंधों को अधिक महत्त्व दिया जाता था। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप सभी राज्य जटिल अंतर्निर्भरता द्वारा आपस में जुड़ गए थे। इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य भारत-अमेरिका एवं रूस के बीच व्यापक संबंधों का विश्लेषण करना है। दोनों महाशक्तियों के साथ भारत के रणनीतिक संबंधों को समझने के उद्देश्य से यह विषय अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। दोनों महाशक्तियों ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में वर्चस्व स्थापित किया है साथ ही शक्ति प्रयोग एवं शक्ति नियंत्रण भी किया है।

1.3 भारत-अमेरिका संबंध

भारत एवं अमेरिका विश्व के सबसे प्राचीन एवं बड़े लोकतांत्रिक देशों के रूप में देखे जाते हैं। दोनों देशों के बीच मजबूत ऐतिहासिक धरोहर होने के बावजूद, इनके मध्य भारतीय स्वतंत्रता के प्रारंभिक



वर्षों में मधुर संबंध स्थापित नहीं हो सके। इसका मुख्य कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था थी। अमेरिका और सोवियत संघ के बीच शीत युद्ध के दौरान वैचारिक संघर्ष चल रहा था। भारत ने गुट राजनीति से बचने एवं अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए स्वतंत्र विदेश नीति की अवधारणा प्रस्तुत की थी। इस अध्याय में भारत-अमेरिका संबंध तीन चरणों के माध्यम से देखे जाएँगे— शीत युद्ध के दौरान, शीत युद्ध की समाप्ति के बाद और तीसरा चरण चीन एक उभरती महाशक्ति होने के बाद।

1.3.1 शीत युद्ध के दौर में भारत-अमेरिका संबंध

हिरोशिमा और नागासाकी पर अमेरिका द्वारा परमाणु बम गिराने के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में शीत युद्ध का आरंभ हुआ था। इस चरण में विश्व दो भागों में बँटा हुआ था। भारत ने नव स्वतंत्र देश होने के कारण गुटनिरपेक्षता के सिद्धांत को अपनाकर सामरिक स्वायत्तता के रास्ते को चुना। परिणामस्वरूप भारत, दक्षिण पूर्व एशिया संधि संगठन (SEATO) और केंद्रीय संधि संगठन (CENTO) जैसे अमेरिकी सैन्य एवं सुरक्षा गठबंधनों में से किसी का भी हिस्सा नहीं था। जबकि पाकिस्तान इन संगठनों का एक सक्रिय सदस्य बना, जिसके बाद संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत के संबंध कमजोर हो गए। सभी अन्तर्राष्ट्रीय मंचों एवं मुद्दों पर दोनों देशों के बीच संघर्ष निरंतर बढ़ते चले गए। शीत युद्ध के समय दोनों देशों के बीच विवाद हंगरी संकट, चेकोस्लोवाकिया संकट, संयुक्त राष्ट्र में चीन की सदस्यता, कश्मीर समस्या, पाकिस्तान को अमेरिकी हथियार हस्तांतरण और परमाणु मुद्दे के दौरान स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे थे।

1.3.2 कश्मीर मुद्दा

कश्मीर मुद्दे पर भारत को अमेरिका से सकारात्मक समर्थन प्राप्त नहीं हुआ था। कश्मीर समस्या भारतीय स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही प्रारंभ हो गई थी, जब पाकिस्तान की सहायता से कश्मीर में कबायली आक्रमण हुआ था। अमेरिका ने पाकिस्तान की आक्रामकता को नजरअंदाज किया एवं भारत पर हथियार प्रतिबंध लगा दिए। अमेरिका का यह नकारात्मक रवैया 1971 तक जारी रहा। शिमला समझौते पर हस्ताक्षर के बाद से ही अमेरिका ने कश्मीर संघर्ष को द्विपक्षीय बातचीत के माध्यम से सुलझाने में भारतीय पक्ष का समर्थन किया। शीत युद्ध के समाप्त होने के साथ स्थिति में सुधार हुआ, जहाँ भारत ने अपनी अर्थव्यवस्था खोली और मजबूत आर्थिक शक्ति के रूप में उभरा। सोवियत संघ के विघटन के बाद विश्व में प्रभावी रूप से मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था सार्वभौमिक सिद्धांत के रूप में स्थापित हुई थी। विश्व में अपना वर्चस्व बनाए रखने हेतु अमेरिका ने अब निरंतर भारत के



साथ अपने सकारात्मक एवं मजबूत संबंध विकसित किए, जो बाद में रणनीतिक स्वायत्तता में बदल गए। यह 1999 के कारगिल युद्ध के दौरान परिलक्षित होता भी है, जब अमेरिका ने भारत-पाक संघर्ष में प्रभावी रूप से मध्यस्थता की थी।

1.3.3 पाकिस्तान-भारत और अमेरिका के बीच एक मिश्रित संबंध

भारत का विभाजन अत्यंत पीड़ादायक था, जिसके परिणामस्वरूप भारत और पाकिस्तान दो प्रतिद्वंद्वी देश बनकर उभरे थे। शीत युद्ध के प्रारंभिक दौर में भू-रणनीतिक महत्त्व को ध्यान में रखते हुए भारत ने संयुक्त राज्य अमेरिका का सहयोगी होने से इन्कार कर दिया। अमेरिका ने शीत युद्ध के दौरान पाकिस्तान को अपने सहयोगी के रूप में समर्थन दिया। सीटो और सेंटो संगठन के तहत पाकिस्तान को संयुक्त राज्य अमेरिका से हथियार हस्तांतरण और अन्य सैन्य और राजनयिक सहायता प्राप्त हुई जो भारत की सुरक्षा के दृष्टि से हानिकारक थी। इसके बाद भारत और अमेरिका के बीच संबंध काफी बिगड़ गए थे। वास्तव में अमेरिका की पाकिस्तान से नजदीकियाँ भारत-अमेरिका संबंधों में प्रमुख रुकावट थीं। यह संघर्ष तब भी देखा गया जब भारत ने परमाणु हथियारों का विरोध किया था। निरस्त्रीकरण पर भारत की रणनीतिक स्थिति के कारण उसने परमाणु अप्रसार संधि को अस्वीकार कर दिया। निरस्त्रीकरण की दिशा में भारत ने एनपीटी का विरोध किया, जिसके बाद परमाणु शक्तियों और गैर-परमाणु शक्तियों के बीच एक विभाजित विश्व का निर्माण हुआ था। भारत ने इस भेदभावपूर्ण संधि का विरोध किया। भू-राजनीतिक वातावरण के अनुरूप भारत ने 1974 में शांतिपूर्ण परमाणु परीक्षण किया। इसकी वजह से अमेरिका द्वारा भारत पर प्रतिबंध लगाए गए, क्योंकि उस समय तक भारत को एक प्रतिद्वंद्वी के रूप में देखा जाता था। भारत ने वियतनाम, भारत-चीन उपमहाद्वीप में संयुक्त राज्य अमेरिका के युद्ध का विरोध किया था और 1971 के युद्ध में जब पाकिस्तान को हराया तो इससे संयुक्त राज्य अमेरिका के राजनीतिज्ञ अधिक चिंतित हुए थे।

भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच राजनीतिक मतभेदों और सैन्य असहयोग के बावजूद दोनों देश कई अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में भागीदार थे। भारत-चीन संघर्ष के दौरान अमेरिका के PL480 कार्यक्रम के तहत भारत को खाद्य सहायता प्रदान की गई थी। 1970 के दशक में जब भारत आर्थिक संकट के दौर से गुजर रहा था तो अमेरिका समर्थित विश्व बैंक से ऋण भी प्राप्त किया था। भू-राजनीतिक कारणों की वजह से दोनों देशों के संबंध सकारात्मक रूप नहीं ले सके। शीत युद्ध की समाप्ति के साथ यह परिदृश्य बदल गया।



1.3.4 शीत युद्ध की समाप्ति के बाद भारत-अमेरिका द्विपक्षीय संबंध

शीत युद्ध की समाप्ति के पश्चात् दोनों देशों के संबंधों में सुधार हुआ। सोवियत संघ के विघटन के साथ ही विचारधारा की लड़ाई का भी अंत हो गया एवं पूँजीवाद, मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के साथ प्रमुख विचारधारा के रूप में प्रस्तुत हुई। शीत युद्ध की अवधि के बाद भारत-अमेरिका संबंधों ने एक नया चरण देखा। यह काफी हद तक भारत में आर्थिक परिवर्तन के कारण था अब भारत ने स्वतंत्रता के पश्चात् अपनाई गई राज्य सहायता प्राप्त मिश्रित अर्थव्यवस्था को समाप्त कर दिया था। नए आर्थिक संकटों से निपटने के लिए भारत ने आईएमएफ से ऋण लिया एवं मुक्त व्यापार और बाजार आधारित अर्थव्यवस्था पर आधारित यूएसए मॉडल के अनुरूप अपनी अर्थव्यवस्था को ढाला। इस आर्थिक परिवर्तन के बाद अमेरिका एवं पाकिस्तान के संबंधों की प्रासंगिकता भी कम होने लगी।

शीत युद्ध के पश्चात् अमेरिका के पहले राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने भारत को सकारात्मक दृष्टि से नहीं देखा था। इसलिए उनके नए सहायक सचिव रॉबिन राफेल ने कश्मीर के भारत का अभिन्न अंग होने की कानूनी वैधता पर स्पष्ट रूप से सवाल उठाये थे और ओमनीबस ट्रेड एक्ट के सुपर 301 क्लॉज के माध्यम से भारत पर प्रतिबंध लगाए थे। इसके बाद एशियाटिक सोसाइटी और कार्नेगी एंडोमेंट फॉर इंटरनेशनल पीस स्टडीज जैसे कई अमेरिकी थिंक टैंकों ने भारत-अमेरिका संबंधों के नए युग आरंभ का आह्वान किया था। यह काफी हद तक लोकतंत्रीकरण और मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था की राष्ट्रपति क्लिंटन की नीति का परिणाम था। भारत के द्वारा अपने बाजार अर्थव्यवस्था को खोलने के राजनीतिक-आर्थिक पर्यावरण ने अमेरिका को भारत के साथ अपने जुड़ाव पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित किया था। आर्थिक खुलेपन ने अमेरिकी राजनयिकों को आकर्षित किया। इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि अमेरिकी वाणिज्य विभाग ने विश्व के दस उभरते बाजारों की सूची बनाई है, जो अमेरिका के व्यापार और निवेश को बढ़ा सकते हैं, भारत उनमें से एक था। मई 1994 में भारत के प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव द्वारा वाशिंगटन की यात्रा ने अमेरिका के साथ भारत के द्विपक्षीय संबंधों को नई आकृति प्रदान की थी। इस यात्रा का उद्देश्य भारत और अमेरिका के बीच व्यापार और निवेश के क्षेत्र में संबंधों को बढ़ाना था। यह यात्रा प्रभावपूर्ण थी इसके बाद अमेरिकी वाणिज्य सचिव रोनाल्ड ब्राउन ने दोनों देशों के बीच एक वाणिज्यिक गठबंधन बनाने के लिए वाणिज्य मंत्री प्रणब मुखर्जी के साथ एक समझौता जापन पर हस्ताक्षर किए थे। यह परामर्श के लिए एक मंच था, जो आने वाले वर्षों में दोनों देशों के बीच घनिष्ठ और संवर्धित व्यापारिक संबंधों को सुगम बनाएगा। इस समझौते से भारत के साथ 10 व्यापारिक समझौते हुए। इस अवधि को



भारत में अमेरिका के निवेश की शुरुआत को भी देखा गया था।

आर्थिक सहयोग के बाद दोनों देशों ने रक्षा सहयोग के क्षेत्र में भी अपने संबंधों को मजबूत किया था। इसके परिणामस्वरूप तत्कालीन अमेरिकी रक्षा सचिव विलियम पेरी ने 1995 में भारत का दौरा किया और भारत के साथ विस्तृत रक्षा सहयोग के निर्माण हेतु एक समझौते पर हस्ताक्षर किए। यह समझौता 1990 में पाकिस्तान पर लगाए गए हथियारों के प्रतिबंधों के फलस्वरूप हुआ था। इस प्रकार हम देखते हैं कि शीत युद्ध की समाप्ति के बाद आए आर्थिक परिवर्तनों ने भारत-अमेरिका को सहयोगी बनाया था। अफगानिस्तान से सोवियत सैनिकों की वापसी के पश्चात् पाकिस्तान अमेरिका के लिए अपनी सभी रणनीतिक प्रासंगिकता खो देता है। शीत युद्ध के पश्चात् भारत और अमेरिका के बीच मतभेदों में कुछ कमी आई है तथा आर्थिक एवं रक्षा सहयोग के नए युग की शुरुआत हुई, लेकिन परमाणु मुद्दे जैसी कुछ समस्याओं ने अभी भी उनके मजबूत संबंधों को धूमिल कर रखा है। यह विवाद चरम सीमा पर तब पहुँच गया जब भारत ने 1998 में पोखरण-II नामक परमाणु हथियार का परीक्षण किया। साथ ही कश्मीर में भारत के व्यवहार को कुछ अमेरिकी द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन के रूप में देखा गया, जो इसे अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भी उठाते थे। परमाणु परीक्षण करने के साथ ही अमेरिका ने अपनी 'कैप, फ्रीज और बैक' की नीति के तहत भारत पर प्रतिबंध लगा दिए। साथ ही अमेरिका का राजनीतिक प्रयास पाकिस्तान को एक सहयोगी के रूप में आगे बढ़ाने के पक्ष में था। इसलिए पाकिस्तान के पास परमाणु शस्त्रागार होने के बावजूद उन प्रतिबंधों का सामना नहीं करना पड़ा जैसा कि भारत ने इस परीक्षण के बाद अनुभव किया था। इस तरह के रणनीतिक फैसलों ने भारत के आर्थिक विकास को पटरी से उतार दिया था। इसने भारत-रूस की साझेदारी सौदे की क्रायोजेनिक रॉकेट डील पर हस्ताक्षर को भी प्रभावित किया। पोखरण-II के बाद भारत को जिन संकट का सामना करना पड़ा वह अल्पकालीन थे। पाकिस्तान द्वारा सीमा उल्लंघन के कारण 1999 में कारगिल युद्ध हुआ। लेकिन भारत अर्थव्यवस्था की दृष्टि से अभी भी लचीलापन दिखा रही है। परिणामस्वरूप अमेरिकी प्रशासन ने कारगिल युद्ध में भारत की स्थिति का समर्थन करके गतिरोध को दूर किया। इसके बाद वर्ष 2000 में राष्ट्रपति क्लिंटन की भारत यात्रा भी हुई जिसके तहत भारत और अमेरिका के बीच कई समझौतों पर हस्ताक्षर हुए।

1.3.5 11 सितंबर के बाद भारत-अमेरिका संबंध

वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर 11 सितंबर के हमले ने वैश्विक परिदृश्य को काफी प्रभावित किया। इस घटना के



बाद अमेरिका-पाकिस्तान संबंधों में दूरी बढ़ गई। साथ ही बुश प्रशासन ने परमाणु परीक्षण के भारत से प्रतिबंध हटाने के बारे में विचार किया था। इस हमले के बाद भारत एक प्रमुख सहयोगी के रूप में उभरा, जिसने आतंकवाद के खिलाफ अमेरिकी युद्ध का समर्थन किया। हालाँकि नैतिक मूल्यों पर रणनीति का चयन करते हुए अमेरिका ने भौगोलिक कारणों से आतंकवाद के खिलाफ अपने युद्ध में पाकिस्तान को अपना सहयोगी बना लिया। इसके बाद भारत पाकिस्तान के हमले के प्रति संवेदनशील हो गया। जैसे 13 दिसंबर को भारतीय संसद पर हमला और 2001 में कश्मीर विधानसभा पर हमला। हालाँकि ओसामा बिन लादेन की मृत्यु और इराक के विनाश के साथ सद्दाम हुसैन की मृत्यु ने भारत-अमेरिका संबंधों ने अब एक नया मोड़ लिया। यह काफी हद तक अमेरिका में राजनीतिक नेतृत्व में बदलाव और विश्व व्यवस्था में परिवर्तन की वजह से हुआ था। जहाँ अमेरिका को एक उभरते हुए चीन का सामना करना पड़ा, जो नए सिद्धांतों के अनुसार एक नई विश्व व्यवस्था की संरचना तैयार करने की कोशिश कर रहा था और अमेरिकी नेतृत्व को नुकसान पहुँचा रहा था। इस संदर्भ में अमेरिका उभरते भारत की ओर बढ़ रहा था, जिसे भौगोलिक और सामरिक कारणों से बढ़ते चीन को रोकने के लिए समर्थन दिया जा सकता था। पाकिस्तान की आंतरिक राजनीतिक और आर्थिक अस्थिरता के कारण उसे अमेरिका से समर्थन मिलना धीरे-धीरे कम हो गया था।

1.3.6 उभरता हुआ भारत : अमेरिका के लिए एक रणनीतिक विकल्प

एक स्थिर अर्थव्यवस्था, जीवंत लोकतंत्र और सकारात्मक मानव संसाधन ने भारत को आर्थिक निवेश के लिए महत्वपूर्ण बना दिया है और भारत की विदेश नीति के अपने सिद्धांतों का खाका तैयार करने में काफी मजबूत किया है। इस विश्वास ने सामरिक स्वायत्तता के विचार को उत्पन्न किया है, जो शीत युद्ध के बाद युग में भारत की विदेश नीति के एक प्रमुख सिद्धांत के रूप में उभरा है। इस सिद्धांत का उपयोग भारत अमेरिका के साथ सक्रिय रूप से जुड़ने के लिए कर रहा है। सामरिक स्वायत्तता में नीति विशेषज्ञों का कहना है कि भारत अपनी आवश्यकताओं के अनुसार यह चयन करता है कि कब स्वतंत्र होना है और कब गठबंधन आधारित रणनीति का प्रयोग करना है। कल्याणरमन के अनुसार, 'रणनीतिक स्वायत्तता एक राज्य की अपने राष्ट्रीय हितों को आगे बढ़ाने और अन्य राज्यों द्वारा किसी भी तरह से बाधित किए बिना अपनी पसंदीदा विदेश नीति अपनाने की क्षमता को दर्शाती है। परिणामस्वरूप यह भारत की स्वतंत्र पसंद है, जिसका प्रयोग किसी भी देश के निकट जाने के लिए किया जाता है। इस सिद्धांत को भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने पहली बार सिंगापुर में 2018 में शांगरी ला संवाद में अपने मुख्य भाषण में बताया था। उन्होंने कहा कि 'यह



हमारी सामरिक स्वायत्तता का एक पैमाना है कि रूस के साथ भारत की सामरिक साझेदारी, विशेष एवं विशेषाधिकार प्राप्त होने के लिए परिपक्व हो गई है, साथ ही रूस के साथ संबंधों में समानता का चित्रण करते हुए, “रणनीतिक स्वायत्तता” का सिद्धान्त मजबूत हुआ है। वर्तमान संदर्भ में 2018 की सामरिक स्वायत्तता पर विवाद फिर से शुरू हो गया, जब भारत ने अक्टूबर 2018 में एस-400 मिसाइल रक्षा प्रणाली खरीदने के लिए रूस के साथ 5.5 अरब डॉलर के रक्षा सौदे पर हस्ताक्षर किए हैं और ईरान ने 2018 में संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा खुला विरोध के बावजूद तेल व्यापार जारी रखने का फैसला किया है।

भारत और अमेरिका के बीच सामरिक स्वायत्तता की रूपरेखा को पूरी तरह से समझने के लिए इसे निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है—

1. असैन्य परमाणु सहयोग

शांतिपूर्ण असैन्य परमाणु सहयोग समझौता जिस पर 2008 में हस्ताक्षर किए गए थे, यह दोनों देशों के बीच पहली बड़ी रणनीतिक सफलता है। इस समझौते के माध्यम से परमाणु प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत के वैश्विक अलगाव को खत्म किया। यह भारत पर 1974 में शांतिपूर्ण परमाणु परीक्षण के बाद बड़े प्रतिबंधों के रूप में लगाया गया था। 2005 में जब राष्ट्रपति बुश ने रणनीतिक समझौतों पर हस्ताक्षर किए, तो इसने भारत को एक जिम्मेदार एवं प्रमुख परमाणु शक्ति के रूप में भी मान्यता दी। यह घोषणा अमेरिका की पहले के रुख से बिल्कुल विपरीत थी, जब भारत ने एनपीटी पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया था। इस समझौते के स्थान पर भारत को परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह से असैन्य परमाणु समझौतों में वाणिज्य तक पहुँच प्राप्त हुई। इस समझौते ने भारत को रूस, फ्रांस, दक्षिण कोरिया, जापान और ऑस्ट्रेलिया जैसे कई अन्य देशों के साथ इसी तरह के परमाणु सहयोग समझौतों पर हस्ताक्षर करने में मदद की।

2. रक्षा सहयोग

2005 में 10 साल की अवधि के लिए हस्ताक्षरित रक्षा सहयोग समझौते में संयुक्त समुद्री अभ्यास, हथियारों की आपूर्ति और रक्षा सूचनाओं को साझा करना शामिल है। इस सहयोग के परिणामस्वरूप उन्होंने 2007 में संयुक्त मालाबार नौसैनिक अभ्यास शुरू करने का फैसला किया। इसके बाद क्वाड-लेटरल सिक्योरिटी डायलॉग (QUAD) नाम से एक बहुपक्षीय संगठन की अवधारणा प्रस्तुत की गई, जिसमें भारत, अमेरिका, जापान और ऑस्ट्रेलिया शामिल थे। साथ ही उन्नत प्रणाली की आपूर्ति के



साथ-साथ रक्षा उत्पादन, विकास भारत-अमेरिका रक्षा सहयोग का एक महत्वपूर्ण आयाम है। इस समझौते के तहत सह-विकास के लिए कुछ महत्वपूर्ण परियोजनाएँ सी-130J सुपर हरक्यूलिस विमान के लिए खुफिया-संग्रह, मोबाइल इलेक्ट्रिक हाइब्रिड पावर स्रोत, सैनिकों के लिए रासायनिक, जैविक युद्ध सुरक्षा गियर आदि शामिल हैं। दोनों देशों के संबंध विकास के अगले चरण में भारत को 2016 में अमेरिका द्वारा एक प्रमुख रक्षा भागीदार नामित किया गया था, जो भारत को अमेरिका से सबसे उन्नत रक्षा उपकरणों की आपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार देता है। भारत ने अमेरिका से C130J विमान, P81 समुद्री निगरानी विमान, और INS जलाश्व, अपाचे अटैक हेलीकॉप्टर और चिन्कू भारी-भरकम हेलीकॉप्टर और अन्य जैसे कई उन्नत रक्षा सामान खरीदे हैं। अगस्त, 2017 में घोषित अमेरिकी दक्षिण एशिया रणनीति में भारत को एक प्रमुख भूमिका निभाने के लिए भी प्रोत्साहित किया गया था। इस रणनीति का उद्देश्य अफगानिस्तान में शांति और स्थिरता बहाल करना एवं आतंकवादी तत्वों पर मौन रहने के लिए पाकिस्तान की आलोचना शामिल है।

3. इंडो-पैसिफिक स्ट्रेटेजिक थिएटर

चीन और अन्य एशियाई देशों, आसियान के सदस्यों के उदय के साथ, हिंद-प्रशांत महासागर ने हाल के वर्षों में रणनीतिक और आर्थिक महत्व हासिल किया है। यह क्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और ऊर्जा संसाधनों के लिए प्रमुख आपूर्ति मार्ग के रूप में शामिल है। इसमें दो हॉटस्पॉट हैं— मलक्का जलडमरूमध्य और दक्षिण चीन सागर। संकीर्ण मलक्का जलडमरूमध्य हिंद महासागर को प्रशांत महासागर से जोड़ता है और दक्षिण चीन सागर चीन और उसके पाँच पड़ोसियों— ताइवान, वियतनाम, ब्रुनेई, मलेशिया और फिलीपींस के बीच एक विवादित स्थान के रूप में उभरा है। चीन दक्षिण चीन सागर के 90 प्रतिशत हिस्से पर दावा करता है और इस क्षेत्र में शक्ति प्रक्षेपण में शामिल है, इसे अमेरिका ने नेविगेशन की स्वतंत्रता के आधार पर स्वीकार नहीं किया है। भारत-प्रशांत क्षेत्र में भी महत्वाकांक्षी चीन ने 21वीं सदी के समुद्री रेशम मार्ग की शुरुआत की है। इस प्रकार प्रशांत क्षेत्र भारत के लिए अद्वितीय सामरिक महत्व रखता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से अमेरिका इस क्षेत्र में एक प्रमुख शक्ति रहा है और चीन के उदय और उसके शक्ति प्रक्षेपण से इस क्षेत्र में अमेरिकी प्रभाव पर संध लगने की संभावना है। परिणामस्वरूप यू.एस. पैसिफिक कमांड का नाम बदलकर हाल ही में इंडो-पैसिफिक कमांड कर दिया गया, जो इस क्षेत्र में भारत और हिंद महासागर के लिए यू.एस. के महत्व का प्रतीक है। इस प्रकार भारत और अमेरिका हिंद-प्रशांत क्षेत्र में अपनी रणनीतिक समझ और साझेदारी को मजबूत करने की ओर बढ़ रहे हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की सामरिक



स्वायत्तता भू-रणनीतिक महत्व पर आधारित है। अमेरिका को चीन के महत्वाकांक्षी वैश्विक विस्तार के खिलाफ विकल्प एवं सहयोगी के रूप में भारत की आवश्यकता है। ऑस्ट्रेलियाई रणनीतिकार पॉल डिब ने 1995 में भविष्यवाणी की थी कि भारत में “प्रभाव की शक्ति के रूप में अधिक क्षमता” और “एक बहुध्रुवीय एशियाई संतुलन में एक उपयोगी खिलाड़ी के रूप में उभर सकता है” और “चीन के प्रति संतुलन के रूप में अमेरिकी हित को आकर्षित कर सकता है।”

1.4 भारत-रूस संबंध

रूस मानचित्र के आधार पर एक अपेक्षाकृत नया देश है, जो 1991 में सोवियत संघ के विघटन के बाद बना था। भारत के सोवियत संघ के साथ काफी मैत्रीपूर्ण संबंध रहे थे। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् जिस प्रकार के योजना आयोग की परिकल्पना की गई थी, वह सोवियत संघ से प्रभावित था। अच्छे संबंध होने के बावजूद भी स्वतंत्रता के बाद भारत ने शीत युद्ध के समय सोवियत संघ से समान दूरी का रास्ता चुना। क्योंकि रूस, सोवियत संघ का उत्तराधिकारी है इसलिए रूस के साथ भारत के संबंधों को सोवियत संघ को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

1.4.1 भारत-सोवियत संबंधों की एक ऐतिहासिक झलक

भारत-सोवियत संघ संबंधों को शीत युद्ध के वातावरण एवं भू-राजनीतिक संबंधों के माध्यम से देखने की आवश्यकता है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाने से सोवियत संघ नाराज हो गया जिसके परिणामस्वरूप दोनों देशों में थोड़ा अविश्वास भी उत्पन्न हुआ था। हालाँकि मिश्रित अर्थव्यवस्था मॉडल को अपनाने से सोवियत संघ को विश्वास हो गया कि पाकिस्तान की तरह भारत अमेरिका के गुट में नहीं शामिल होगा। वास्तविक रूप से सोवियत संघ ने कश्मीर मुद्दे पर निरंतर भारत की स्थिति का समर्थन किया था। चीन में माओवादी क्रांति के बाद सोवियत संघ ने चीन को एक सहयोगी एवं मित्र के रूप में चुना। यही मुख्य कारण था कि 1962 में जब चीन ने भारत पर हमला किया तो उस समय भारत को न तो यूएसएसआर से आवश्यक समर्थन मिला और न ही यूएसए से। भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में आपसी सहयोग और मित्रता के अपने आदर्शवादी सिद्धांत की एक बड़ी हार का सामना किया। भारत ने रणनीतिक रूप से इसके पश्चात् यथार्थवादी नीति को अपनाया। इस निर्णय ने अब रणनीतिक स्वायत्तता की तलाश की और सैन्य खरीद में दीर्घकालिक आत्मनिर्भरता की अपेक्षा की। इस महत्वाकांक्षा में उन्हें व्यवहार्य भागीदारों की



तलाश थी, जिसमें सोवियत रूस ने भारत के साथ सुरक्षा सहयोग सुनिश्चित करने के लिए कदम बढ़ाया। यहाँ भारत के निर्णय को गुटनिरपेक्ष सिद्धांत के परित्याग के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। इसके बजाय उसने सामरिक स्वायत्तता प्राप्त करने के लिए सोवियत आपूर्ति वाले हथियारों को विकल्प के रूप में इस्तेमाल करने की माँग की। ऐसा भारत-पाकिस्तान 1965 युद्ध के बाद ताशकंद समझौते में देखा जा सकता है, जहाँ सोवियत संघ शांति मध्यस्थता के लिए सहमत हो गया।

1960 और 1970 के अशांतिपूर्ण समय की परिणति में भारत-सोवियत सुरक्षा सहयोग में वृद्धि हुई। 1971 में भारत-सोवियत संघ शांति, मित्रता और सहयोग की संधि पर हस्ताक्षर करने और भारतीय संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम के माध्यम से भारतीय संविधान में समाजवाद शब्द को जोड़ने के साथ अपने चरम सीमा पर पहुँच गया। उसी समय सोवियत-चीन संबंध कमजोर हो गए एवं चीन की अमेरिका से नजदीकियाँ बढ़ने लगीं। अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन ने 1972 में पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना की गुप्त यात्रा की। अब अमेरिका, पाकिस्तान और चीन के बीच एक धुरी तैयार हो गई थी। वहीं संधि पर हस्ताक्षर और भू-राजनीतिक परिदृश्य ने भारत-सोवियत संघ मित्रता को एक प्रकार का आपसी विश्वास और सहयोग विकसित करने में मदद की जो सोवियत संघ के विघटन तक जारी रहा। भारत की अधिकांश रक्षा खरीद सोवियत संघ से हुई। मोटे तौर पर भारतीय सेना के सैन्य हार्डवेयर का लगभग 60 प्रतिशत, नौसेना का 70 प्रतिशत और वायु सेना का 80 प्रतिशत हार्डवेयर सोवियत संघ से प्राप्त होता है। इसके अलावा दोनों देशों के निर्णय और रणनीतिक विकल्प शीत युद्ध समय के अधिकांश अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर परिवर्तित हो गए थे।

1.4.2 यू.एस.एस.आर. का पतन और भारत-रूस संबंधों के बीच नए विवाद

सोवियत संघ के विघटन एवं रूस के उदय के बाद विश्व व्यवस्था में नए बदलाव आए हैं। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं कि इस चरण के दौरान भारत ने यूएसए के साथ घनिष्ठ संबंध विकसित किए। परिणामस्वरूप भारत-रूस संबंधों में दूरियाँ आने लगीं। यह काफी हद तक आंतरिक राजनीतिक अशांति के कारण था, जिससे रूस गुजर रहा था। वह अपने राजनीतिक आर्थिक ढाँचे को सुधारने की कोशिश कर रहा था। उसी समय भू-राजनीतिक वातावरण को ध्यान में रखते हुए रूस के नीति निर्माता पाकिस्तान के साथ संबंध विकसित कर रहे थे, जिससे उन्हें इस्लामी देशों में प्रवेश द्वार मिल सकता था। इसके परिणामस्वरूप उनके सामरिक हित ईरान, तुर्की और पाकिस्तान के साथ नए



संबंध बनाने की दिशा में परिवर्तित हो गए। यह तब परिलक्षित हुआ, जब रूस ने दक्षिण एशिया को परमाणु मुक्त क्षेत्र बनाने के संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव का समर्थन किया जिससे भारत का परमाणु कार्यक्रम विफल हो गया। यह समर्थन पाकिस्तान के लिए था क्योंकि रूस अपने सैनिकों को मुक्त करना चाहता था जो पाकिस्तान समर्थित मुजाहिदीन गुट की हिरासत में थे, जिन्हें अफगानिस्तान के यूएसएसआर हस्तक्षेप के दौरान हिरासत में लिया था। भारत-रूसी संबंध तब और खराब हो गए जब क्रायोजेनिक इंजन की प्रौद्योगिकी की खरीद और हस्तांतरण के लिए रूसी अंतरिक्ष निदेशालय ग्लावकोस्मोस और भारत सरकार का अनुबंध टूट गया। इस तकनीक से भारत को अंतरिक्ष यान में अग्रिम ज्ञान प्राप्त करने में मदद मिल सकती थी जिससे वह भू-तुल्यकालिक उपग्रह प्रक्षेपण यान (जीएसएलवी) कार्यक्रम के नाम से ज्ञात उन्नत उपग्रह प्रणाली में आगे बढ़ने में मदद कर सकता था। प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लिए जो अनुबंध होना था वह भी निलंबित कर दिया गया और केवल क्रायोजेनिक इंजन की बिक्री हुई। इससे भारत की अंतरिक्ष आत्मनिर्भरता की महत्वाकांक्षा को झटका लगा था। इस विफलता के बाद जैसा कि हमने भारत-अमेरिका संबंधों में देखा है, यह चरण अमेरिका द्वारा रूस को भारत के लिए रणनीतिक हथियार आपूर्तिकर्ता के रूप में विस्थापित करने और विकल्प के रूप में प्रस्तुत करता है। ऐसा “रुपया बनाम रूबल” विवाद के दौरान भी हुआ। भारत पर तत्कालीन सोवियत संघ का बहुत बड़ा कर्ज था भारत पैसा वापस करने के लिए तैयार था लेकिन नई सरकार ने अब विनिमय दर बढ़ा दी और वापस भुगतान करते समय नई मुद्रा भाजक देना चाहती थी, भारत द्वारा इसका कड़ा विरोध किया गया था। इस विवाद के कारण 1991-92 में दोनों देशों के बीच व्यापारिक संबंध टूट गए। काफी बातचीत के बाद 1993 में एक प्रस्ताव आया जिसके तहत भारत को 2005 तक भारतीय सामानों में रूस को 1 अरब डॉलर प्रति वर्ष चुकाना था और शेष 37 प्रतिशत कर्ज को पैंतालीस वर्षों की अवधि में ब्याज मुक्त चुकाया जाएगा।

1.4.3 भारत-रूस संबंधों में नए युग का उदय

जब अमेरिका ने रूस को उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन (नाटो) के तहत शामिल नहीं किया और पश्चिमी देशों से आवश्यक समर्थन प्राप्त नहीं हुआ तो रूस ने अब अपना स्वतंत्र पुनरुद्धार कार्यक्रम शुरू किया था। येवगेनी प्रिमाकोव के नेतृत्व परिवर्तन ने विश्व व्यवस्था में एक मजबूत रूस की संकल्पना प्रस्तुत की थी। 1996 में जब भारत-अमेरिका संबंध कमजोर हो रहे थे, जिसके बाद रूस ने भारत को अपने प्रभाव में लाने की कोशिश की थी। प्रिमाकोव ने अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा में एक स्थिर शक्ति के रूप में भारत, रूस और चीन के बीच एक ‘रणनीतिक त्रिकोण’ के गठन का भी सुझाव



दिया। प्रिमाकोव के विचार में यह त्रिकोणीय संबंध शीत युद्ध के बाद के युग की अमेरिका के नेतृत्व वाली एक ध्रुवीयता के लिए एक प्रभावी प्रतिसंतुलन होगा, लेकिन भारत और चीन के बीच अविश्वास ने इस प्रगति को रोक दिया। भारत-रूस के बीच घनिष्ठता तब देखी गई, जब राष्ट्रपति बिल क्लिंटन भारत पर अपने परमाणु कार्यक्रम को छोड़ने का दबाव बना रहे थे। रूस ने आगे बढ़कर भारत का समर्थन किया और परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह प्रतिबंध के खिलाफ भारत में दो रूसी लाइट-वाटर रिएक्टर (LWR) बनाने के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किए। इसने तमिलनाडु के कुडुकनाल में दो 1,000 मेगावाट के हल्के पानी के परमाणु रिएक्टरों के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। 1998 में परमाणु परीक्षण करने के लिए रूस ने भारत की आलोचना की लेकिन वह भारत पर अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों का पक्ष नहीं था। वास्तव में रूस ने 1999 में कारगिल संघर्ष में भारत का पूरा समर्थन किया और उसने पाकिस्तान से अपनी सेना वापस बुलाने का आह्वान किया।

1.4.4 रक्षा संबंध

2000 में व्लादिमीर पुतिन के रूसी राष्ट्रपति बनने के बाद उनके नेतृत्व में एक निर्णायक बदलाव तब हुआ, जब भारत के साथ एक रणनीतिक साझेदारी स्थापित की गई, जिसे 2010 में 'विशेष और विशेषाधिकार प्राप्त साझेदारी' में अपग्रेड किया गया। भारत-रूस साझेदारी रक्षा संबंध है। रूस इस क्षेत्र में भारत का विश्वसनीय साझेदार बनकर उभरा है। भारत के लगभग 70 प्रतिशत रक्षा उपकरण रूसी मूल के होने के साथ, संबंधों का रणनीतिक आयाम स्पष्ट है। रूस भारत को उन्नत रक्षा उपकरण और संवेदनशील सैन्य प्रौद्योगिकियाँ प्रदान करता है। सबसे हालिया रक्षा समझौतों में भारत द्वारा पाँच S-400 मिसाइल प्रणालियों की खरीद, 2020 से वितरित की जाने वाली कामोव के -226 टी हेलीकॉप्टरों का संयुक्त निर्माण और चार एडमिरल ग्रिगोरोविच क्लास गाइडेड-मिसाइल स्टील्थ फ्रिगेट का अधिग्रहण और संयुक्त उत्पादन शामिल हैं। कामोव हेलीकॉप्टर डील महत्वपूर्ण है और भारत को वैश्विक डिजाइन और विनिर्माण केंद्र में बदलने के उद्देश्य से सितंबर 2014 में शुरू की गई मेक इन इंडिया पहल को बढ़ावा देने की संभावना है। भारत 200 कामोव हेलीकॉप्टर खरीदेगा, जिनमें से 60 का उत्पादन रूस में और 140 का भारत में हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स के सहयोग से किया जाएगा। एडमिरल गोर्शकोव ने कामोव हेलीकॉप्टर को आखिरकार नवंबर 2013 में भारतीय नौसेना को सौंप दिया और जनवरी 2014 में ये भारत पहुँच गए।



1.4.5 असैन्य परमाणु संबंध

दोनों देशों के बीच असैन्य परमाणु सहयोग का एक लंबा इतिहास रहा है। रूस जो वर्तमान में भारत में परमाणु ऊर्जा संयंत्रों का निर्माण करने वाला एकमात्र देश है। परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह (एनएसजी) की सदस्यता के लिए नई दिल्ली का समर्थन करता है। हाल ही में एक नए समझौते पर हस्ताक्षर किए गए, जिसके तहत रूस ने भारत के विभिन्न हिस्सों में 25 परमाणु ऊर्जा संयंत्र बनाने की योजना बनाई है, जो देश की ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने में काफी मदद करेंगे। वास्तव में रूस परमाणु ईंधन और प्रौद्योगिकी की आपूर्ति करने वाला पहला देश है जो परमाणु ऊर्जा क्षेत्र में विश्व स्तर पर भारत की स्थिति को अत्यधिक बढ़ा देगा। कजाकिस्तान और कनाडा के अलावा रूस भारत के 'रणनीतिक यूरेनियम रिजर्व' में सबसे बड़ा योगदानकर्ता बन गया है। इससे परमाणु रिएक्टरों को ईंधन देने के लिए 15,000 मेगाटन यूरेनियम रिजर्व बनाने में सुविधा होगी।

1.4.6 आर्थिक संबंध

भारत पूर्व सोवियत संघ और सोवियत रूस के बाद के फार्मास्युटिकल उत्पादों के प्रमुख निर्यातकों में से एक रहा है। इसलिए रूस को निर्यात को बढ़ावा देने के लिए अवसरों और चुनौतियों की जाँच करना सार्थक है।

1.4.7 वैश्विक साझेदारी

अमेरिकी आधिपत्य को चुनौती देने और अपनी वास्तविक स्थिति को वापस पाने के लिए रूस भारत को कई अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर समर्थन कर रहा है। वास्तव में वह रूस-चीन और भारत को मिलाकर एक नया गठबंधन बनाना चाहता है। इसे ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका (ब्रिक्स) फोरम और शंघाई-को-ऑपरेशन ऑर्गनाइजेशन (एससीओ) के संचालन से देखा जा सकता है, रूस ने इस क्षेत्र को मजबूत करने के लिए एससीओ की 'पर्यवेक्षक' स्थिति से 'पूर्ण सदस्यता' तक भारत की स्थिति का समर्थन किया। आर्थिक संगठन और पश्चिमी आर्थिक संस्थानों द्वारा वर्चस्व का मुकाबला करने के लिए इसका निर्माण किया गया था। रूस इस बात से अवगत है कि भारत पिछले कई वर्षों के दौरान अपेक्षाकृत उच्च आर्थिक विकास दर हासिल करने में सक्षम रहा है और साथ ही उच्च तकनीक वाले उद्योगों का विकास भी किया है। 12 सितंबर, 2018 को एससीओ और पूर्वी आर्थिक मंच की एक संयुक्त बैठक हुई जब एससीओ के महासचिव राशिद अलीमोव ने 'डिजिटल ट्रांसपोर्ट : द फ्यूचर ऑफ ग्रेटर यूरोशिया' के बारे में बात की। भारत के वाणिज्य और उद्योग मंत्री सुरेश प्रभु ने



इस सत्र में भाग लिया। परिवहन प्रणाली और लागत प्रभावी संचालन को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित किया गया था जो एससीओ क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और आर्थिक सहयोग के विकास को सीधे प्रभावित करता है और राष्ट्रों के बीच घनिष्ठ संबंध सुनिश्चित करता है। यह भारत के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है, जिसका रूस और मध्य एशियाई देशों के साथ भौगोलिक निकटता का अभाव है। प्राथमिक हित परिवहन सहयोग व विस्तार पर रहा है, जो पूरे यूरेशियन क्षेत्र में व्यापार और आर्थिक सहयोग की संपूर्ण प्रणाली के विकास और विस्तार की संभावनाओं को प्रभावित करता है, जो अन्योन्याश्रित बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं में निवेश को आकर्षित करता है। भारत के पास रूस और मध्य एशियाई देशों के साथ आर्थिक सहयोग को मजबूत करने के लिए इन बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं में सक्रिय रूप से भाग लेने का अवसर है। जैसा कि आसानी से समझा जा सकता है कि भारत-रूसी संबंधों को यथार्थवादी स्थिति के लेंस के माध्यम से देखा जाना चाहिए। रूस महाशक्ति की अपनी पिछली स्थिति को फिर से हासिल करने की कोशिश कर रहा है, जिससे वह एक शक्ति बनने के लिए भौगोलिक सीमाओं और स्थानों के साथ खेल रहा है। एक तरफ वह इस त्रिकोणीय संबंध का निर्माण कर रहा है, दूसरी ओर चीन के इशारे पर पाकिस्तान के साथ घनिष्ठ संबंध बना रहा है। वहीं रूस चुपचाप चीन की वन बेल्ट वन रोड पहल को आगे बढ़ा रहा है, जो भारत की सुरक्षा के लिए हानिकारक है। भारत की जरूरतों की कीमत पर चीन के साथ रूस के बढ़ते ऊर्जा संबंध भारत-रूस संबंधों में एक और प्रमुख अड़चन है। हालाँकि भारत रूस के लिए अपरिहार्य है क्योंकि वह विश्व शक्ति बनने की चीन की बढ़ती महत्वाकांक्षा से आशंकित है, इसलिए एक मजबूत भारत की आवश्यकता है कि वह चीन की महत्वाकांक्षा को रोक सके। यह गतिशीलता हमें यह समझने में मदद करेगी कि रूस ने एससीओ और ब्रिक्स दोनों में भारत की सदस्यता का समर्थन क्यों किया। इस तरह हमें भारत के रणनीतिक स्वायत्तता सिद्धांत को समझने की जरूरत है। अमेरिका-भारत असैन्य परमाणु सहयोग के बाद, जिसने भारत पर परमाणु प्रतिबंध पर सभी प्रतिबंध हटा दिए। भारत अभी भी अपनी असैन्य परमाणु ऊर्जा के निर्माण के लिए रूस से मदद लेना जारी रखता है। वास्तव में आज हम देख सकते हैं कि अमेरिका, रूस और इजराइल के शामिल होने से भारत के आपूर्ति कार्टेल में विविधता आई है। इसलिए इस अधिनियम ने तर्कसंगत विकल्प बनाने के लिए भारत को रणनीतिक स्वायत्तता का प्रयोग किया है।



1.5 निष्कर्ष

महाशक्तियों के साथ भारत के संबंध जीरो सम गेम से रणनीतिक स्वायत्तता के खेल में परिवर्तित हो गए हैं। भारत ने प्रारंभिक वर्षों में रूस पर निर्भरता के साथ शीत युद्ध की समाप्ति के बाद अमेरिका के साथ घनिष्ठ संबंध होने तक की दूरी तय कर ली है। स्थिर विकास और मजबूत लोकतांत्रिक साख के साथ भारत किसी भी देश के लिए अपरिहार्य हो गया है। यही कारण है कि भारत समय-समय पर बिना किसी का पक्ष लिए सामरिक स्वायत्तता का प्रयोग करने में सक्षम रहा है। यह हाल ही में रूस-यूक्रेन संघर्ष में स्पष्ट रूप से देखा गया है जिसमें भारत रूस के प्रतिबंध लगाने के पक्ष नहीं था और यह विश्व शांति बनाए रखने और दुनिया की सुरक्षा बढ़ाने के लिए संघर्ष को समाप्ति हेतु एक रणनीतिक मध्यस्थ बन गया है। अमेरिका और रूस दोनों के साथ संबंधों में भारत निशस्त्रीकरण के अपने कार्यक्रम को बदलकर एवं सामरिक रूप से विकसित, हथियारों की ताकत हासिल करके एक यथार्थवादी स्थिति में रहा है। जिससे कोई भी देश अपनी क्षेत्रीय सीमाओं को कमजोर करने की कोशिश न कर सके। हाल ही में भारत-चीन सीमा विवाद के माध्यम से इसका बहुत अच्छी तरह से अनुमान लगाया गया था जहाँ चीन को भारतीय सीमा से वापिस पीछे जाना पड़ा। सीमा विवाद को लेकर भारत और चीन के बीच लंबी समय अवधि से वार्ता चल रही है।

1.6 अभ्यास प्रश्न

1. बदलते सामरिक परिवेश में भारत-अमरीका संबंधों की प्रकृति का वर्णन कीजिए।
2. 21वीं सदी में भारत-अमरीका संबंधों के महत्वपूर्ण क्षेत्रों की चर्चा कीजिए।
3. 21वीं सदी में भारत-रूस संबंधों का समालोचनात्मक विश्लेषण करें।
4. शीत युद्ध और शीत युद्ध के बाद के युग में भारत-रूस और भारत-अमेरिका के संबंधों में आप क्या अंतर देखते हैं?

1.7 संदर्भ-सूची

- गांगुली, सुमित. (2011), *भारत की विदेश नीति : पूर्वव्यापी और संभावना*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।



- पंत, हर्ष वी. (2016), *भारत की विदेश नीति : पूर्वव्यापी और संभावना*, मैन्चेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस।
- सीकरी, राजीव. (2013), *चुनौती और रणनीति : भारत की विदेश नीति पर पुनर्विचार*, सेज प्रकाशन।
- मेलोन, डेविड एम. (2016), *द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ इंडियन फॉरेन पॉलिसी*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi



पाठ-2 : भारत और चीन

डॉ. अभिषेक प्रताप सिंह

संरचना

- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 प्रस्तावना
- 2.3 इतिहास और पृष्ठभूमि
- 2.4 द्विपक्षीय संबंधों की प्रासंगिकता
- 2.5 1962, सीमा युद्ध
- 2.6 तिब्बत का मुद्दा
- 2.7 आर्थिक और व्यावसायिक संबंध
- 2.8 दक्षिण एशिया में बेल्ट रोड की पहल चीन के द्वारा
- 2.9 गलवान बॉर्डर विवाद
- 2.10 कोरोना संकट और वैश्विक चुनौतियाँ
- 2.11 भारत चीन संबंधों का भविष्य
- 2.12 अभ्यास प्रश्न
- 2.13 संदर्भ-सूची

2.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी—

- भारत और चीन के बीच राजनीतिक और राजनयिक संबंधों को समझेंगे, वे उनके बीच द्विपक्षीय व्यापार और आर्थिक संबंधों से भी अवगत होंगे।
- सांस्कृतिक और शैक्षिक संबंधों, भारत-चीन सीमा विवाद, भारत-चीन संबंध में तिब्बत फैक्टर, वन बेल्ट वन रोड परियोजनाओं के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।



2.2 प्रस्तावना

भारत और चीन दोनों ही समाज मात्र नहीं हैं; वे एक प्राचीन सभ्यताएँ हैं। हम सटीक रूप से ये नहीं कह सकते कि दोनों ने कब एक दूसरे से सांस्कृतिक आदान-प्रदान करना शुरू किया। परंतु हम जो जानते हैं वह यह है कि इनका परस्पर विकास और संवाद समानांतर रूप में हुआ। और इस सम्बन्ध में इतिहास में कई उदाहरण देखने को मिलते हैं। बौद्ध धर्म के प्रसार से पूर्व भी 1500-1000 ईसा पूर्व में शांगझोऊ सभ्यता तथा प्राचीन वैदिक सभ्यता में भाषाई आदान-प्रदान के कुछ साक्ष्य मिलते हैं। उदाहरण के लए, चीन में 'वुमंगझी' (अनामका) को संस्कृत एवं पाली में अनामिका कहा जाता है। इसी तरह चीन के लोगों का हवाला देते हुए भारत के कुछ प्राचीन साहित्य में 'चीन' का उल्लेख भी मिलता है।

चर्चा के प्रमुख बिंदु—

- भारत चीन ऐतिहासिक सम्बन्ध
- भारत और चीन संवाद उपनिवेशिक काल में
- भारत चीन युद्ध 1962
- भारत चीन अनसुलझा सीमा विवाद
- भारत चीन आर्थिक सम्बन्ध
- भारत चीन संबंध समकालीन वैश्विक राजनीति में
- नरेंद्र मोदी सरकार की चीन नीति

2.3 इतिहास और पृष्ठभूमि

आज़ादी के पूर्व भी भारत और चीन में उपनिवेशिक काल में कई संवाद देखने को मिलते हैं। जिसमें गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की चीन यात्रा का वर्णन बहुत ही प्रमुख है। इसके अलावा चीन जापान युद्ध के दौरान भारतीय मेडिकल मिशन का नेतृत्व कर रहे डॉ. कोटनिस के योगदान को भी दोनों देशों के रिश्तों में अहम स्थान प्राप्त है। आज़ादी के बाद 1950 के दशक में भी 'भारत-चीन सहयोग' के आधार पर एक मज़बूत एशिया एकता का प्रयास किया गया था।

आज भारत और चीन, जो कि विश्व की जनसंख्या के एक-तिहाई भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं,



की तुलना करने का एक चलन सा बन गया है। इन दो एशियाई महाशक्तियों के बीच अनसुलझा सीमा-विवाद परस्पर शत्रुता का मूल है। दोनों ही एक-दूसरे के रणनीतिक प्रतिद्वंद्वी भी हैं, क्योंकि राजनीतिक सोच के टकराव और रणनीतिक उद्देश्यों के चलते दोनों ही एक-दूसरे पर संदेह करते हैं। कड़वी सच्चाई तो यही है कि बीजिंग नियंत्रण रेखा को स्पष्ट करने को तैयार नहीं है। ऐसा करने पर भारत पर सैन्य दबाव कम होगा। नतीजतन वर्षों से सीमा को लेकर लगातार चल रहे संवाद के बावजूद विश्व में भारत और चीन केवल ऐसे पड़ोसी हैं, जो परस्पर निर्धारित नियंत्रण रेखा से विभाजित नहीं होते। भारत व चीन एक लम्बी अवधि से एक-दूसरे को सामरिक, आर्थिक एवं कूटनीतिक दृष्टि से पीछे करने के लिए प्रयत्न करते आ रहे हैं तथा एशिया में अपने वर्चस्व को लेकर उलझ रहे हैं। आज के राजनीति में चल रहे संक्रमण काल में भारत-चीन संबंधों की नई पहल का महत्व दोनों देशों के हितों के लिए ही नहीं, अपितु तृतीय विश्व के विकासशील देशों के हितों के लिए भी आवश्यक है।

1940 के दशक में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीसी) के नेतृत्व में चीन की मुक्ति और भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद, दोनों राज्यों ने मज़बूत 'एशियाई सहयोग' के लिए एक उत्साह बनाया, जिसे एशियाई संबंध सम्मेलन (एआरसी) में अपनी अभिव्यक्ति मिली। जिसे बाद में बांडुंग (1955) में एफ्रो एशियाई एकजुटता के रूप में अधिक स्पष्ट प्रतिक्रिया के साथ शुरू किया गया। प्रारंभिक शीत युद्ध की अवधि में, स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री, जवाहरलाल नेहरू ने एशिया के दो सबसे बड़े राज्यों के बीच साम्राज्यवाद विरोधी दोस्ती को आपसी संबंधों के लिए एक अनिवार्य जरूरत माना। नेहरू का विश्वास था कि एशियाई एकजुटता के उनके दृष्टिकोण के लिए चीन के साथ एकजुटता आवश्यक थी। 1954 में दोनों दक्षिण के देशों ने पंचशील समझौते पर हस्ताक्षर किए, जिसमें उनके द्विपक्षीय संबंधों के आधार के रूप में 'शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व' के सिद्धांतों को रेखांकित किया।

2.4 द्विपक्षीय संबंधों की प्रासंगिकता

मोटे तौर पर दो प्रकार के विचार हमें भारत और चीन संबंध को समझने की दिशा में देखने को मिलते हैं। पहला स्कूल यथार्थवाद (realist discourse) से संबंधित है, जो मानता है कि भारत और चीन के द्विपक्षीय संबंधों में हमें एक सीमितता देखने को मिलती है, जोकि दोनों को अधिक परस्पर सहयोग करने से रोकता है। इस स्थिति में दोनों देश एक दूसरे के प्रति एक शंका का भाव रखते हैं।



यह भाव उनकी अधिक शक्ति की इच्छा से आता है, और एशियाई राजनीति में प्रभाव और एक प्रतिस्पर्धी के बीज दोनों के बीच बोता है। यथार्थवादी स्कूल दोनों के बीच द्विपक्षीय संबंधों की पहचान करता है और रणनीतिक प्रतिद्वंद्विता की व्यस्तताओं और उपस्थिति से इसकी पुष्टि करता है।

उदारवादी विचारधारा (liberal discourse) के अनुसार, भारत और चीन दोनों ही वैश्विक आर्थिक प्रणाली में प्रमुख आर्थिक शक्तियाँ हैं। उदारवादी विचारधारा का तर्क है कि आर्थिक संबंधों का महत्व दोनों देशों के बीच बेहतर और सहज संबंध को बढ़ा सकते हैं। इससे शांतिपूर्ण सहअस्तित्व को भी बल मिलेगा। इसके अलावा एक तीसरे विचार के अनुसार जोकि दोनों देशों के बीच सभ्यतागत मूल्यों को प्रमुखता देता है, के अनुसार दोनों देशों को अपने इतिहास को महान सभ्यताओं के रूप में प्रतिबिंबित करने की आवश्यकता है, और जिसे उनके विचारों और व्यवहारों की समानता से पोषित किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण संघर्ष से दूर संपर्क और सहयोग पर जोर देता है, और एशिया एकता और सहयोग को अपना आधार मानता है। (civilisational discourse) हाल के वर्षों में पीएम नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भारत के नए राजनीतिक अभिजात वर्ग ने भारत की धारणा को एक 'सभ्यतागत राज्य' के रूप में समझने पर जोर दिया है और इसके लिए भारतीय इतिहास से उपयुक्त उदाहरणों को आधार बनाया है।

2.5 1962, सीमा युद्ध

दोनों के बीच सीमा विवाद के कारण 1962 का युद्ध हुआ और दोनों के बीच द्विपक्षीय संबंधों में एक लंबा विराम लग गया। 1954 में, चीन ने भारत के अक्साई चिन के माध्यम से झिंजियांग को तिब्बत से जोड़ने वाली एक सड़क का निर्माण किया, इस बारे में भारत को 1959 में पता चला, जिससे दोनों देशों के बीच तनाव और बढ़ गया। युद्ध ने भारत-चीन संबंधों पर भी लंबे समय तक प्रभाव डाला। इसने एशियाई एकजुटता के नेहरूवादी दृष्टिकोण को ध्वस्त कर दिया और चीन के प्रति नेहरू की नीति पर भारतीय राजनीतिक अभिजात वर्ग को तेजी से विभाजित किया। नेहरू को यह भ्रम था कि चीन भारत पर कभी हमला नहीं करेगा, नेहरू को लगा कि बातचीत से सीमा विवाद सुलझाया जा सकता है, इसलिए वे चीन की हरकतों को नजरअंदाज करते रहे और भारत ने युद्ध की तैयारी भी नहीं की थी। कई लोग जवाहरलाल नेहरू को युद्ध में हार कारण बताते हैं। भारत पर आक्रमण कर चीन ने भारतीय राजनीतिक नेताओं का भ्रम तोड़ दिया कि चीन भारत पर कभी



आक्रमण नहीं करेगा। 1962 युद्ध के बाद भारत ने चीन के प्रति अपनी नीति बदली।

चीन में कम्युनिस्ट पार्टी के सबसे बड़े नेता माओत्से तुंग ने नवंबर 1938 में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (सीसीपी) की सेंट्रल कमेटी की एक बैठक में कहा था कि 'सत्ता बंदूक की नली से निकलती है।' इसके बाद चीनी कम्युनिस्ट क्रांति में यह नारा मूल मंत्र बना। कहा जाता है कि 1962 में चीन ने भारत पर हमला किया तो यह केवल हिमालय के किसी क्षेत्र पर नियंत्रण या अंतरराष्ट्रीय सीमाओं को बदलने के लिए नहीं था बल्कि यह सभ्यता की जंग थी। माओ ने 1949 में कम्युनिस्टों की जीत से पहले अंतरराष्ट्रीय संधियों को एकतरफा होने का आरोप लगाते हुए इसे खारिज कर दिया। भारत चीन के साथ लगी सीमा की 'ऐतिहासिकता को आधार' बनाते हुए सही ठहराने में लगा रहा और चीन युद्ध की तैयारी कर रहा था। माओ ने 'मैकमोहन रेखा' जोकि भारत और चीन को विभाजित करती है, को औपनिवेशिक बताते हुए इसे मानने से इनकार कर दिया। आने वाले वर्षों में चीन पूरे अरुणाचल प्रदेश पर अपना दावा करने लगा और इस इलाके को 'साउथ तिब्बत' के नाम से बताने लगा।

चीन लगातार बॉर्डर विवाद को जीवित करता रहता है, जिससे आपसी संबंधों को अक्सर ठेस पहुँचती है। इसके कारण दोनों देशों में नागरिक समाज भी उत्तेजित होकर राजनीतिक व्यवस्था पर कठोर निर्णय लेने का दबाव बनता है, इस सबके कारण कूटनीतिक बातचीत संभव नहीं हो पाती। चीन के सैनिकों ने घात लगाकर 20 अक्टूबर, 1975 को अरुणाचल प्रदेश के कुलुंग ला में असम राइफल की पेट्रोलिंग पार्टी पर हमला कर दिया था। चीन के इस हमले में भारतीय सेना के चार सैनिक शहीद हो गए थे। चीन की इस हरकत के 45 वर्षों बाद एक बार फिर से लाइन ऑफ एक्चुअल कंट्रोल (एलएसी) पर भारतीय और चीनी सैनिकों के बीच खूनी संघर्ष हुआ है। हाल के दिनों में दोकलाम विवाद ने एक बार फिर बॉर्डर विवाद को जीवित कर दिया, जिसमें 21 भारतीय जवान शहीद हुए।

द्विपक्षीय संबंधों में सामान्यीकरण की प्रक्रिया राजीव गाँधी की चीन यात्रा (1988) के बाद शुरू हुई और 2003 में प्रधानमंत्री वाजपेयी की चीन यात्रा के दौरान और तेज हो गई। मई, 1998 में अटल बिहारी वाजपेयी सरकार द्वारा पोखरण में परमाणु विस्फोट किया गया। भारत को परमाणु ताकत का आधिकारिक दर्जा देने वाली यह घटना पड़ोसी को नागवार गुजरी। लिहाजा इस घटना पर उसकी तीखी प्रतिक्रिया ने दोनों के बीच संबंधों को करीब झुलसा ही दिया। जून 1999 में तत्कालीन विदेश मंत्री जसवंत सिंह ने चीन दौरा किया। इस दौरे में दोनों पक्षों ने एक दूसरे को धमकी न देने



के वचन को दोहराया। मई-जून 2010 में तत्कालीन राष्ट्रपति के.आर. नारायणन की यात्रा से दोनों के बीच उच्च स्तरीय आदान-प्रदान की वापसी हुई। जनवरी 2002 में चीनी प्रधानमंत्री झू रोंगजी भारत आए। 2003 में अटल बिहारी वाजपेयी की चीन यात्रा ने एक नए चरण को चिह्नित किया। भारत और चीन के बीच बॉर्डर विवाद को लेकर एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए। दोनों देशों ने इस विषय पर बातचीत शुरू की। 1990 और 2000 के दशक में, दोनों देशों ने सीमा पर शांति और शांति के प्रबंधन पर महत्वपूर्ण समझौतों और प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किए हैं। पिछले कुछ वर्षों में ये द्विपक्षीय संबंधों में नया विश्वास और सहयोग पैदा करने में सफल रहे हैं। 2008 में जब भारतीय प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने चीन का दौरा किया, तब द्विपक्षीय संबंध प्रफुल्लित हो गए, क्योंकि दोनों देशों ने “21वीं सदी पर साझा दृष्टिकोण” घोषणा पर हस्ताक्षर किए। यह दोनों देशों के बीच ‘शांति और समृद्धि के लिए सामरिक और सहकारी साझेदारी’ विकसित करने पर आधारित था।

2.6 तिब्बत का मुद्दा

तिब्बत विवाद (Tibet Issue) भी दोनों देशों के बड़े विवाद का कारण है। इसके बीज इतिहास में छुपे हुए हैं तिब्बत का इतिहास बेहद उथल-पुथल भरा रहा है। कभी वो एक स्वतंत्र इलाके के तौर पर रहा तो कभी मंगोलिया और चीन के ताकतवर राजवंशों ने उस पर हुकूमत की। लेकिन साल 1950 में चीन ने इस इलाके पर अपना झंडा लहराने के लिए हज़ारों की संख्या में सैनिक भेज दिए। तिब्बत के कुछ इलाकों को स्वायत्तशासी क्षेत्र में बदल दिया गया और बाकी इलाकों को इससे लगने वाले चीनी प्रांतों में मिला दिया गया। लेकिन साल 1959 में चीन के खिलाफ हुए एक नाकाम विद्रोह के बाद 14वें दलाई लामा को तिब्बत छोड़कर भारत में शरण लेनी पड़ी, जहाँ उन्होंने निर्वासित सरकार का गठन किया। साठ और सत्तर के दशक में चीन की सांस्कृतिक क्रांति के दौरान तिब्बत के ज़्यादातर बौद्ध विहारों को नष्ट कर दिया गया। माना जाता है कि दमन और सैनिक शासन के दौरान हज़ारों तिब्बतियों की जाने गई थीं।

इस प्रकार चीन ने तिब्बत की सांस्कृतिक धरोहरों को न सिर्फ नष्ट किया बल्कि शक्ति और ताकत के बल पर तिब्बत पर अपना नियंत्रण भी कर लिया। ये तिब्बत के प्रति चीन की आक्रामक नीति का परिणाम है, जिसकी भारत और विश्व के कई देशों ने आलोचना भी की है। भारत आधिकारिक तौर पर तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र को चीन का हिस्सा मानता है। लेकिन चीन दलाई लामा को चीन-विरोधी और अलगाववादी कहता रहा है और उनके साथ किसी भी तरह के संबंध रखने पर



आपति जताता रहा है। समय-समय पर चीन ने दलाई लामा के अरुणाचल प्रदेश जाने पर नाराज़गी भी दिखाई है।

जबकि भारत ने 1950 के दशक में तिब्बती मुद्दे पर चीन को रणनीतिक रियायतें दीं, दोनों के बीच संबंध अभी भी तिब्बती मुद्दे पर उलझे हुए हैं। तिब्बती विद्रोहों ने अक्सर चीनी सत्ता को कमजोर किया है, जिसके कारण हिंसक विरोध और प्रदर्शन हुए हैं। चीन तिब्बती बौद्ध धर्म के साथ भारत के संबंधों के बारे में संदिग्ध बना हुआ है, जो अप्रैल 1959 में दलाई लामा को भारत द्वारा शरण दिए जाने के बाद और अधिक महत्वपूर्ण हुआ है। हाल के वर्षों में, भारत ने सीमा मुद्दों पर चीनी बारीकियों पर विचार करते हुए तिब्बती मुद्दे पर अपने विकल्पों को खुला रखा है और इनका ध्यानपूर्वक स्व-मूल्यांकन भी किया है।

चीन और तिब्बत के बीच विवाद, तिब्बत की क़ानूनी स्थिति को लेकर है। चीन कहता है कि तिब्बत तेरहवीं शताब्दी के मध्य से चीन का हिस्सा रहा है लेकिन तिब्बतियों का कहना है कि तिब्बत कई शताब्दियों तक एक स्वतन्त्र राज्य था और चीन का उस पर निरंतर अधिकार नहीं रहा। मंगोल राजा कुबलई खान ने युआन राजवंश की स्थापना की थी और तिब्बत ही नहीं बल्कि चीन, वियतनाम और कोरिया तक अपने राज्य का विस्तार किया था। जब 1949 में चीन ने तिब्बत पर कब्ज़ा किया तो उसे बाहरी दुनिया से बिल्कुल काट दिया। तिब्बत में चीनी सेना तैनात कर दी गई, राजनीतिक शासन में दखल किया गया, जिसकी वजह से तिब्बत के नेता दलाई लामा को भाग कर भारत में शरण लेनी पड़ी। फिर तिब्बत का चीनीकरण शुरू हुआ और तिब्बत की भाषा, संस्कृति, धर्म और परम्परा सबको निशाना बनाया गया।

चीन के राष्ट्रपति जियांग जेमिन के साथ तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की मुलाकात के बाद भारत ने पहली बार तिब्बत को चीन का अंग मान लिया था। हालाँकि तब ये कहा गया था कि ये मान्यता परोक्ष ही है। लेकिन दोनों देशों के बीच रिश्तों में इसे एक महत्वपूर्ण कदम के तौर पर देखा गया था। वाजपेयी-जियांग जेमिन की वार्ता के बाद चीन ने भी भारत के साथ सिक्किम के रास्ते व्यापार करने की शर्त मान ली थी। तब इस कदम को यूँ देखा गया कि चीन ने भी सिक्किम को भारत के हिस्से के रूप में स्वीकार कर लिया है। भारतीय अधिकारियों ने उस वक्त ये कहा था कि भारत ने पूरे तिब्बत को मान्यता नहीं दी है, जो कि चीन का एक बड़ा हिस्सा है। बल्कि भारत ने उस हिस्से को ही मान्यता दी है, जिसे स्वायत्त तिब्बत क्षेत्र माना जाता है।



2.7 आर्थिक और व्यावसायिक संबंध

दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय स्टार पर कई मुद्दे हैं, जो लगातार विवाद का कारण बने हुए हैं। आर्थिक मोर्चे (Economic Relations) पर, दोनों देशों को कुछ 'संरचनात्मक समस्याओं' का भी सामना करना पड़ रहा है क्योंकि वे अपनी अधिक प्रभावी वैश्विक आर्थिक भूमिका के लिए तत्पर हैं। द्विपक्षीय व्यापार एक बड़ी छलाँग लगाने में विफल रहा है, और 'ट्रेड डीफिसिट' भारत के लिए एक बड़ी चिंता बनी हुई है। सस्ते चीनी निर्यात के प्रभाव से भारतीय लघु उद्योग और घरेलू विनिर्माताओं को भी नुकसान हुआ है। हाल ही में संपन्न हुई 11वीं संयुक्त आर्थिक समूह (जेईपी) की बैठक 2018 में, दोनों देश आर्थिक संबंधों (लाइवमिंट 2018) में व्यापार की समस्या को दूर करने के लिए एक दीर्घकालिक रोडमैप तैयार करने पर सहमत हुए।

हालाँकि प्रधानमंत्री मोदी के 'आत्मनिर्भर भारत अभियान' के फलस्वरूप चीन के साथ भारत का व्यापार घाटा वर्ष 2018-19 के 53.57 अरब डॉलर से घटकर वर्ष 2020-21 में 44.02 अरब डॉलर रह गया। वाणिज्य एवं उद्योग राज्यमंत्री अनुप्रिया पटेल ने संसद को यह जानकारी दी। पटेल ने राज्यसभा में एक प्रश्न के लिखित उत्तर में कहा कि चीन को निर्यात वर्ष 2020-21 में बढ़कर 21.19 अरब डॉलर का हो गया है, जो वर्ष 2019-20 में 16.61 अरब डॉलर का हुआ था। वर्ष 2018-19 में निर्यात 16.75 अरब डॉलर का हुआ था। कोरोना काल और दोकलाम विवाद के बाद भारत के चीनी कम्पनियों पर कुछ कड़े प्रतिबंध लगाए हैं, जिसके कारण व्यापार घाटे में कमी देखने को मिली है।

भारतीय वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय ने 12 क्षेत्रों की पहचान की है, जिनमें भारत को एक वैश्विक आपूर्तिकर्ता बनाने और आयात बिल में कटौती करने का लक्ष्य रखा गया है। इनमें खाद्य प्रसंस्करण, जैविक खेती, लोहा, एल्युमीनियम और ताँबा, कृषि रसायन, इलेक्ट्रॉनिक्स, औद्योगिक मशीनरी, फर्नीचर, चमड़ा और जूते, ऑटो पार्ट्स, वस्त्र, मास्क, सैनिटाइज़र और वेंटिलेटर शामिल हैं।

इस बीच, उनके आर्थिक विकास के मॉडल को देखें तो पता चलेगा कि दोनों देशों के बीच आर्थिक विकास दर में अंतर भी एक निश्चित विषमता का कारण बना दिया है। जबकि चीन ने 1978 से बहुत पहले आर्थिक सुधार प्रक्रिया शुरू की थी, आर्थिक उदारीकरण की दिशा में भारत का अभियान 1990 के दशक के अंत में शुरू हुआ था। अगर हम 1950 और 1980 तक पीछे मुड़कर देखें तो भारत और चीन की जीडीपी विकास दर लगभग 3.5 प्रतिशत प्रति वर्ष (स्वामी, 1989) थी। लेकिन 1980 और 2004 के बीच के वर्षों में, चीन की जीडीपी विकास दर भारत की तुलना में



तुलनात्मक रूप से बहुत अधिक थी। बढ़ते आर्थिक अंतर को चीन के राज्य पूँजीवाद मॉडल (State Capitalism Model) ने तेज गति दी, जिससे दोनों देशों के बीच अंतर पैदा हुआ, जोकि बाद में आर्थिक स्तर पर प्रभावी हुआ।

इसके अलावा, भारत के नए शासन ने 'विकासात्मक साझेदारी' के आधार पर चीन के साथ जुड़ाव के दायरे को व्यापक बनाने और नए सहयोग क्षेत्रों का निर्माण करने की माँग की है। विशेष रूप से, अपने 'मेक इन इंडिया' अभियान के तहत, पीएम मोदी ने चीनी कंपनियों को निवेश करने, सहयोग करने और 'स्थायी विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, कौशल विकास, बुनियादी ढाँचे के निर्माण और निर्यात के नेतृत्व वाले विकास मॉडल के लिए स्थितियाँ बनाने' के लिए एक खुला निमंत्रण दिया है। साथ ही औद्योगिक पार्कों, रेलवे में सहयोग, ऋण और पट्टे, ढाँचागत विकास, कौशल विकास आदि में चीन के साथ 'क्षेत्रीय सहयोग' की पहचान करने पर बल दिया है। इससे दोनों के बीच द्विपक्षीय आर्थिक संबंधों में 'हाई ट्रेड डेफिसिट' की समस्या का भी समाधान होगा (द न्यू इंडियन एक्सप्रेस 2015)। हालाँकि, एक चुनौती लगातार बनी हुई है कि कैसे बढ़ते आर्थिक सहयोग और व्यापक राजनीतिक जुड़ाव और सामाजिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान से द्विपक्षीय संबंधों की चिंताओं को कम करने के लिए अभी भी बहुत पीछे हैं। क्षेत्रीय और बहुपक्षीय स्तरों पर जैसे कि G20 समूह, ब्रिक्स समूह, SCO आदि मंचों पर दोनों ही देश साझा प्रयास करते ही दिख रहे हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि यह सम्बंध भविष्य में नई उँचाइयों को प्राप्त करेंगे।

2.8 दक्षिण एशिया में बेल्ट रोड की पहल चीन के द्वारा

चीन की महत्वाकांक्षी बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (बीआरआई) के तहत, चीन ने दक्षिण एशियाई राज्यों में महत्वपूर्ण निवेश लिंक बनाने का लगातार प्रयास किया है। जिससे बीआरआई (BRI) को लेकर भारत की आशंकाओं को देखते हुए दोनों देशों के साथ बातचीत में एक संशय स्थिति बनी हुई है। भारत बीआरआई को चीन द्वारा किया जा रहा एक रणनीतिक योजना का हिस्सा है, जिसके परिणाम भारत को भी प्रभावित करेंगे। दक्षिण एशिया के चार देशों—पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका और नेपाल में चीनी निवेश के पैटर्न—जो सभी बीआरआई का हिस्सा है, प्राकृतिक संसाधनों और घरेलू बाजारों पर नियंत्रण प्राप्त करने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करते हैं (फाइनेंशियल एक्सप्रेस 2018)। लैटिन अमेरिका और अफ्रीका में चीनी निवेश पैटर्न की तरह, क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण संसाधनों को नियंत्रित करने के लिए चीन के असाधारण प्रयास निश्चित रूप से भारत के लिए एक महत्वपूर्ण



भू-रणनीतिक चुनौती पेश करते हैं। चीन इन दिनों तेजी से बीआरई योजना के तहत अपने कर्ज और लालच के जाल में दुनिया के गरीब देशों को फंसा रहा है। ड्रैगन की इस नीति को एक्सपोर्ट्स 'डेब्ट ट्रैप डिप्लोमेसी' (Debt Trap Diplomacy) का नाम दे रहे हैं, के चक्कर में कई देश बर्बाद होने की ओर आगे बढ़ रहे हैं। अभी तक चीन की नजर खास तौर पर एशियाई देशों पर ही सीमित थी, लेकिन अब ड्रैगन अफ्रीका महाद्वीप पर नजरे गड़ाए हुए हैं। साल 2020 में जब पूरी दुनिया कोरोना वायरस महामारी की मार से परेशान थी, तब चीन ने अफ्रीका के कई देशों में 33 हजार करोड़ रुपये से ज्यादा का निवेश किया था। चीन की चाल का अंदाजा इससे ही लगाया जा सकता है कि वह अफ्रीका में तेल, गैस और खनिज के उत्पादक देशों में ही कई परियोजनाओं में निवेश कर रहा है।

चीन की चाइना डेवलपमेंट बैंक (सीडीबी) और एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट बैंक ऑफ चाइना (एक्जिम बैंक) आइवरी कोस्ट और रवांडा में हाइड्रो पावर स्टेशन और लेसोथो में सोलर फेसिलिटी के लिए बड़े पैमाने पर निवेश कर रही हैं। इन देशों के अलावा, चीन के इन दो सरकारी बैंकों ने बांग्लादेश, पाकिस्तान, कंबोडिया और सर्बिया में भी अरबों डॉलर के प्रोजेक्ट को फाइनेंस किया हुआ है। इस राशि का बड़ा हिस्सा चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग के महत्वाकांक्षी प्रोजेक्ट बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव के साथ जुड़ा हुआ है। चीन के लालच के चक्कर में जिम्बाब्वे का पर्यावरण बर्बादी की कगार पर खड़ा है। इस देश में चीन के कारण न सिर्फ जमीन, बल्कि जानवर और जंगल भी खतरे का सामना कर रहे हैं। चीन की सरकारी कोयला कंपनियाँ जेनक्सिन कोल माइनिंग ग्रुप और एफ्रोक्लाइन स्मेल्टिंग ने जिम्बाब्वे के प्राकृतिक संसाधनों का जमकर दोहन कर रही हैं। जिसके कारण वहाँ के जंगल, जानवर और जमीन को भारी नुकसान पहुँचा है। इस देश के कई पर्यावरण कार्यकर्ताओं ने चीनी कंपनियों के खिलाफ कई आंदोलन चलाए, लेकिन सरकार ने उन आंदोलनों को कुचल कर रख दिया। इसके अलावा, चीन की बढ़ी हुई नौसैनिक पहुँच और हिंद महासागर क्षेत्र में बंदरगाह सुविधा विकास में बढ़ते निवेश ने भी भारत के साथ कुछ चिंताएँ बढ़ाई हैं। चीन ने अन्य दक्षिण एशियाई राज्यों में भी भारत को असहज करने के लिए काफी राशि का निवेश किया है। भारतीय पड़ोस में चीन की बढ़ती आर्थिक उपस्थिति भारत के लिए दीर्घकालिक भू-राजनीतिक निहितार्थ रखती है।

वन बेल्ट वन रोड (ओबीओआर) रणनीति, एक बहुत बड़ी भू-राजनीतिक योजना है, जो भारत के अनुसार, जम्मू और कश्मीर पर भारत की संप्रभुता के लिए चिंताओं को उजागर करती है। भारत, पाकिस्तान के परमाणु कार्यक्रम के लिए चीन को प्राथमिक स्रोत के रूप में रखता है, और सीपीईसी (CPEC) के साथ, भारत चीन-पाकिस्तान की बढ़ती हुई साँठ-गाँठ को देखता है। यह सब क्षेत्रीय



स्थिरता और सुरक्षा पर चिंताओं में योगदान देता है, जिसके परिणामस्वरूप द्विपक्षीय संबंधों में और जटिलता आती है।

2.9 गलवान बॉर्डर विवाद

कोविड-19 के प्रकोप के दौरान, सीमा पर गलवान की घटना ने देशों के बीच संबंधों को फिर से नया आकार दिया है। इस घटना का एक महत्वपूर्ण प्रभाव भारत और चीन के बढ़ते आर्थिक सहयोग पर पड़ा है। जून 2020 लद्दाख की घटना ने भविष्य में दूसरी पीढ़ी के लिए द्विपक्षीय संबंधों में आपसी विश्वास के कारक को गंभीरता से प्रभावित किया है। और यह राजनीतिक नेतृत्व के स्तर से शुरू होकर नागरिक समाज तक पूरे प्रतिष्ठान में हुआ है। चूँकि दोनों शक्तियाँ वर्तमान गतिरोध को 'विघटित और कम करने' के लिए 'सहमत शर्तों' पर आने में विफल रहती हैं, इसलिए दोनों पक्षों की ओर से 'राजनीतिक सिग्नलिंग' के तौर पर सैन्य लामबंदी के साथ स्थिति तनावपूर्ण बनी हुई है।

भारतीय पक्ष के लिए, यह प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के लोकप्रिय नेतृत्व में 'राष्ट्रीय स्वाभिमान' का सवाल बन गया है। इस घटना से भारतीय नेतृत्व अचंभित रह गया है, जो चीन के साथ 'संबंधों को स्थिर करने' के प्रयासों में लगा रहा है। इसको देखते हुए यह घटना उनके लिए और अधिक आश्चर्य के रूप में सामने आयी है। भारत बहुत स्पष्ट है कि उसकी सभी 'सीमा अवसंरचना गतिविधियाँ' एलएसी के भारतीय पक्ष के भीतर हैं, और चीनी सेना अतिक्रमण करके एलएसी से आगे बढ़ गए हैं। अब बड़ा सवाल यह है कि भविष्य में भारत-चीन संबंधों के लिए इस घटना का क्या प्रभाव होगा। एक बात तो निश्चित है कि गलवान हिंसा ने दोनों देशों के बीच नयी दूरी को जन्म दिया है, जिसे कम करना इतना आसान नहीं होगा। साथ ही इससे राजनीतिक स्तर पर एक गहरी अविश्वास को भी बढ़ावा मिला है, जिसको कम समय में भरना आसान नहीं होगा। बॉर्डर पर अधिक संख्या में सेना की मौजूदगी भी इस बात का प्रमाण है कि कूटनीतिक चैनल ज्यादा कारगर साबित नहीं हो रहे हैं।

सीमा पर शांति बनाए रखने और अन्य द्विपक्षीय संबंधों में सहयोग के निर्माण करने का पुराना ढाँचा द्विपक्षीय संबंधों में अब एक खोया हुआ साँचा है। जैसा कि मौजूदा गतिरोध की रूपरेखा और दोनों पक्षों से बड़े पैमाने पर सैन्य लामबंदी को देखते हुए स्थिति खतरनाक बनी हुई है, यह द्विपक्षीय संबंधों में एक 'नया सामान्य' बना सकता है। क्षेत्र में 'विस्तारवादी प्रवृत्तियों' के बारे में भारतीय प्रधानमंत्री के बयानों और चीनी विदेश मंत्री वांग यी की टिप्पणी को ध्यान में रखते हुए कि 'दोनों के बीच सीमा सीमांकन की कमी' हमेशा समस्याओं का कारण बनेगी, 'सीमा तनाव' के तथ्य



को अच्छी तरह से स्थापित करती है। द्विपक्षीय संबंधों में यह स्थिति एक न्यू नार्मल जैसी प्रवृत्ति को जन्म दे सकती है, जोकि किसी भी सूरत में दोनों देशों के लिए अच्छी बात नहीं है।

2.10 कोरोना संकट और वैश्विक चुनौतियाँ

यदि हम क्रमवार अध्ययन करें तो इस समस्या से निपटने में चीन ने दो प्रमुख स्तरों पर कमियों का परिचय दिया। एक तो वहाँ की 'आपातकालीन स्वस्थ व्यवस्था' का, जो कम-से-कम इस समस्या के उपजने के शुरुआती दिनों में तेज़ी से काम नहीं कर पाई और साथ ही प्रांत स्तर पर चीन के हुबेई प्रांत के और वुहान महानगर के 'राजनीतिक प्रशासन' का गैर जिम्मेदारी रवैया रहा। यह समस्या वैश्विक अर्थव्यवस्था पर भी प्रभाव डालती है। 14 ट्रिलियन से अधिक की चीनी अर्थव्यवस्था वैश्विक वाणिज्य के केंद्र पर है। चीनी आपूर्ति पर निर्भर अन्य कंपनियों को चुनौती का सामना करना पड़ रहा है।

यहाँ यह भी जानना जरूरी है कि कोरोना वायरस, जो चीनी शहर वुहान में दिसंबर 2019 में उभरा था, एक रोगजनक के रूप में है जो गंभीर तीव्र श्वसन सिंड्रोम या सार्स का कारण बनता है। 2003 में SARS प्रकोप से सीख लेने के बाद भी, चीन में कोरोना प्रकोप से निपटने के लिए शीघ्रता और प्रभावशीलता का अभाव था। अग्रणी पत्रिका नेचर (Nature) द्वारा प्रकाशित अध्ययन (17 March 2020) में उद्धृत महामारी वैज्ञानिकों का कहना है कि चीन की प्रतिक्रिया में एक स्पष्ट दोष था कि "यह बहुत देर से शुरू हुआ"।

सीएनएन (CNN) के मुताबिक, पहला मामला सामने आने के एक महीने बाद तक उन्होंने स्क्रीनिंग के उपाय नहीं किए। उस समय के दौरान 'अफवाहें' फैलाने के लिए नागरिकों को कथित रूप से गिरफ्तार किया गया था, और जो पत्रकार प्रकोप पर रिपोर्ट करने की कोशिश कर रहे थे, उन्हें हिरासत में लिया गया। अंत में राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने आदेश दिया कि वायरस को "पूरी तरह रोकथाम" होना चाहिए। लेकिन यह सब 23 जनवरी, 2020 के बाद हुआ जब वुहान को पूरी तरह से बंद कर दिया गया। चीन में इस निर्णायक देरी के कारण संक्रमित लोगों को व्यापक रूप से आवागमन की छूट रही, जिससे यह वायरस आज वैश्विक महामारी का रूप ले चुका है।

चीन की इस चूक का एक कारण चीनी की राजनीतिक व्यवस्था में व्याप्त विरोधाभास भी है। चीन में समस्या यह है कि स्थानीय नेता अपने केंद्रीय नेतृत्व को नाराज़ नहीं करना चाहते। उनके



क्षेत्र में समस्या की कोई भी खबर उनके प्रभाव और छवि को खतरे में डालती है। अस्थिरता सत्तावादी सरकारों को अस्थिर करती है; नागरिक अशांति और प्रेस की आलोचना उनका सबसे बड़ा दुश्मन है। इसलिए किसी भी समस्या को निपटने के साथ-साथ, दबाने का भी प्रयास जारी रहता है। जात हो कि किसी भी 'सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या' का समुचित प्रबंधन करने के लिए पारदर्शिता आवश्यक है। यहीं पर चीन ने बड़ी चूक की है, इससे उनके शासन मॉडल की प्रभावशीलता के अलावा एक विकसित देश और सक्षम स्वास्थ्य व्यवस्था के उनके दावों को भी नुकसान होगा।

2.11 भारत चीन संबंधों का भविष्य

प्रथम दृष्टि से दोनों देशों के बीच नेतृत्व को सहयोग और समवाद को जारी रखना होगा, ऐसा होने से द्विपक्षी सहयोग और सूझबूझ को बढ़ाने के अवसर प्राप्त होंगे। साथ ही सहयोग की इस भावना के साथ दोनों ही देश बेहतर राजनीति परिपक्वता को प्रदर्शित कर सकेंगे। इसके अलावा दोनों देशों को अपने-अपने विकास मॉडल में एक-दूसरे के प्रति सहयोग और सहभागिता दिखानी होती, आज जहाँ चीन अंतरिक्ष क्षेत्र, अधिसंरचना, तकनीक प्रयोग और आविष्कार को प्रमुखता दे रहा है, वहीं भारत भी सूचना तकनीकी क्रान्ति और मेक इन इंडिया (Make in India) जैसे कार्यक्रमों के द्वारा आगे बढ़ रहा है। ऐसे में दोनों देशों के बीच सहयोग जरूरी है। इस दिशा में 'भारत चीन रणनीतिक आर्थिक डायलाग' एक महत्वपूर्ण कड़ी है, जिसमें दोनों देशों ने पर्यावरण, सौर ऊर्जा, हाई स्पीड रेलवे और इलेक्ट्रॉनिक उद्योग में सहयोग को बढ़ाने में बल दिया गया है। चीन भी फार्मास्यूटिकल और आई.टी. (IT) जैसे क्षेत्रों में भारत को अधिक जगह देकर द्विपक्षी व्यापार घाटे पर भारतीय चिंताओं को दूर कर सकता है। दोनों देशों के बीच नागरिक समाज संवाद को भी और बढ़ाना होगा, जिसके लिए दोनों देशों के प्रमुख नगरों के बीच अधिक उड़ान सेवा, सहज वीजा नियम, सांस्कृतिक और कला सहयोग को बढ़ाने की ओर प्रयास करना होगा।

इसके अलावा, सीमा की घटना देशों के बीच 'आर्थिक निर्भरता' के लुप्त होते तर्क की भी पुष्टि करती है। पिछले कई वर्षों में 'विकासात्मक साझेदारी' के सिद्धांत के तहत, दोनों राज्यों ने आर्थिक सहयोग के लिए नए क्षेत्रों में सहयोग करने का प्रयास किया। चीन पर प्रधानमंत्री मोदी की वकालत रेलवे, कौशल विकास और शहरी नियोजन जैसे नए क्षेत्रों में सहयोग के साथ चीन-भारत की सतत आर्थिक साझेदारी के निर्माण की उनकी समझ पर आधारित थी। लेकिन हाल की घटनाओं ने इन विषयों पर अब आगे बढ़ने की संभावनाओं पर विराम लगा दिया है।



2.12 अभ्यास प्रश्न

1. भारत और चीन के बीच सीमा विवाद की प्रकृति क्या है? विवेचना कीजिए।
2. भारत और चीन के बीच 1962 के युद्ध के क्या-क्या कारण थे?
3. आप भारत और चीन दोनों देशों के बीच आर्थिक संबंधों को कैसे देखते हैं?
4. भारत चीन के साथ अपने व्यापार घाटे को कैसे कम कर सकता है? व्याख्या कीजिए।
5. कैसे कोरोना संकट ने भारत-चीन संबंधों को प्रभावित किया है?

2.13 संदर्भ-सूची

- Abraham, Itty. 2008a. “Bandung and State Formation in Post-Colonial Asia.” Bandung Revisited: The Legacy of the 1955 Asian African Conference for International Order, edited by See Seng Tan and Amitav Acharya, 48–67. Singapore: NUS Press.
- Singh, Abhishek Pratap. 2017. “India-China Relations: Prospects & Challenges under Modi Regime”, in *India’s Foreign Policy: Continuity with Difference Under Modi Government*, Shantesh Kumar Singh (ed.): 396, Manak Publications.
- Singh, Abhishek Pratap. 2018. “BIMSTEC: Making some headway”, *The Pioneer*, 13 September, New Delhi.
- Singh, Abhishek Pratap. 2019. “Collaborating through Cinema”, *China India Dialogue*, December.
- _____. 2008b. “From Bandung to NAM: Non-alignment and Indian Foreign Policy, 1947–65.” *Commonwealth & Comparative Politics* 46.2: 195–219.
- Abraham, Meera. 1988. *Two Medieval Merchant Guilds of South India*. New Delhi: Manohar, 1988.
- Acharya, Alka. “India-China Relations: An Overview.” In *The Peacock and the Dragon: India-China Relations in the 21st Century*, edited by Kanti Bajpai and Amitabh Matoo, 168–198. New Delhi: Har-Anand Publications, 2000.
- Acharya, Amitav. 2017. *East of India, South of China: Sino-Indian Encounters in Southeast Asia*. New Delhi: Oxford University Press.
- Acker, William R. B. 1974. *Some T’ang and Pre-T’ang Texts on Chinese Painting, Volume II, Part 1*. Leiden: E.J. Brill.
- “Address Presented to His Holiness Tai Hsu.’ *The Maha-Bodhi: Journal of the Maha Bodhi Society* 48.2–3 (February & March 1940): 92–93.



- 'Aḥbār as-Ṣīn wa l-Hind and Jean Sauvaget, trans. 1948. Relation de la Chine et de L'Inde: rédigée en 851 (Relation of China and India, written in 851). Paris: Les Belles Lettres.
- Ahmad, S. Maqbul. 1989. Arabic Classical Accounts of India and China. Shimla: Indian Institute of Advanced Study.
- Aitken, Molly and Eugene Wang. 2018. "Art and Vision: Varieties of World Making." In What China and India Once Were: The Pasts That May Shape the Global Future, edited by Sheldon Pollock and Benjamin Elman, 265-309. New York: Columbia University Press.
- Akasoy, Ana. 2013. "The Buddha and the Straight Path. Rashīd al-Dīn's Life of the Buddha: Islamic Perspectives." In Rashīd al-Dīn. Agent and Mediator of Cultural Exchanges in Ilkhanid Iran, edited by Anna Akasoy, Charles Burnett, and Ronit Yoeli-Tlalim, 173–196. London and Turin: The Warburg Institute and Nino Aragno Editore.
- Al-Tajir, Sulayman, Abū Zaid Hasan ibn Yazīd Al-Sirafī and the late Learned Eusebius Renaudot, trans. 1733. Ancient Accounts of India and China by Two Mohammedan Travellers Who Went to Those Parts in the Ninth Century. London: Printed for Sam. Harding at the Bible and Anchor on the Pavement in St. Martins-Lane.
- Andrade, Tonio. 2016. The Gunpowder Age: China, Military Innovation, and the Rise of the West in World History. Princeton: Princeton University Press.
- Anonymous. 1931a "Tan Yunshan tiaochen zhi Zang zhengce (Tan Yunshan's Memorandum on the Policy of Governing Tibet). Yiyuan 1.23: 252–53.
- Anonymous. 1955. The Indian Cultural Delegation in China, 1955. Beijing Foreign Languages Press.
- Anonymous. 1963. The India-China Border Dispute and the Communist Party of India: Resolutions, Statements and Speeches, 1959–1963. New Delhi: Communist Party Publication.
- Ashtor, E. 1976. "Spice Prices in the Near East in the 15th Century." Journal of the Royal Asiatic Society 108.1 (January): 26–41.
- Atwell, William S. 1982. "International Bullion Flows and the Chinese Economy circa 1530–1650." The Past and Present Society 95 (May): 68–90.
- Atwill, David G. 2018. Islamic Shangri-La Inter-Asian Relations and Lhasa's Muslim Communities, 1600 to 1960. Oakland: University of California Press.
- Aydin, Cemil. 2007. The Politics of Anti-Westernism in Asia: Visions of World Order in Pan-Islamic and Pan-Asian Thought. New York: Columbia University Press, 2007.
- Bagchi, P[rabodh] C[handra]. 1927. "India and China: A Thousand Years of Cultural Relations." Greater India Society Bulletin 2: 1–42



पाठ-3 : भारत और यूरोपीयन यूनियन

डॉ. ईशा

संरचना

- 3.1 उद्देश्य
- 3.2 परिचय
- 3.3 बहुध्रुवीयता क्या है?
- 3.4 यूरोपीयन यूनियन
 - 3.4.1 यूरोपीय संघ के बारे में
 - 3.4.2 भारत-यूरोपीय संघ संबंध
 - 3.4.3 भारत के लिए यूरोपीय संघ का महत्त्व
 - 3.4.4 यूरोपीय संघ-भारत शिखर सम्मेलन
- 3.5 निष्कर्ष
- 3.6 अभ्यास प्रश्न
- 3.7 सन्दर्भ-सूची

3.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी—

- यूरोपीय संघ के बारे में समझेंगे; भारत-यूरोपीय संघ संबंध और भारत के लिए यूरोपीय संघ का महत्त्व को जानेंगे।
- वे विभिन्न यूरोपीय-संघ भारत शिखर सम्मेलनों और विश्व व्यवस्था में बदलते समीकरण के बारे में भी विचार प्राप्त करेंगे।

3.2 परिचय

भारत नए बहुध्रुवीय विश्व में तेजी से बड़ी भूमिका निभा रहा है। भारत में एक मध्य शक्ति और एक



उभरती हुई शक्ति की मानसिकता है। उभरता हुआ बहुध्रुवीय विश्व भारत की विदेश नीति के लिए शुभारम्भ के साथ-साथ चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करता है। भू-राजनीति द्वारा परिभाषित एक बहुध्रुवीय दुनिया भारत को वैश्विक अन्योन्याश्रयता प्रदान करके, वैश्विक शासन के श्रमसाध्य रूप से भाग लेने वाले नेतृत्व का पीछा करते हुए, और एक सकारात्मक स्वदेशी इलाके का निर्माण करके अपने सार्वजनिक हित और नेतृत्व के इरादों को आगे बढ़ाने की अनुमति देती है, जो सुधार के लिए और विकल्प प्रदान करता है। एक बहुध्रुवीय दुनिया में लाभदायक अन्योन्याश्रयता बहुआयामी और जटिल है। एक बहुकेंद्रीय दुनिया में शासन की कई परतें होती हैं; क्षेत्रीय शक्तियाँ और संस्थाएँ एक द्विध्रुवीय या एकध्रुवीय दुनिया से आगे के लिए मायने रखती हैं। उभरता हुआ बहुध्रुवीय विश्व भारत की विदेश नीति की शुरुआत के साथ-साथ चुनौतियाँ भी पेश करता है। एक उभरती हुई विश्व व्यवस्था में बढ़ती शक्तियों के माहौल में, बैरी बुज़न, शक्ति के विस्तार के बारे में बात करते हैं कि एक 'बाकी शक्तियों के उदय' के रूप में एक अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली के लिए अग्रणी जिसमें कोई महाशक्तियाँ, कई क्षेत्रीय शक्तियाँ, महान शक्तियाँ और बहुत कुछ होगा (आचार्य और बुजान, 2019)।

भारत के सामने भारतीय बहुपक्षवाद की रणनीतिक दृष्टि की समीक्षा करने और उसे बदलने की चुनौती है। भारत एस.सी.ओ. (SCO) का सदस्य बन गया है, जिसे मूल रूप से चीन, रूस और मध्य एशियाई द्वारा स्थापित किया गया था।

भारत चीन द्वारा प्रवर्तित शंघाई मुख्यालय वाले एशियाई संरचना निवेश बैंक और ब्रिक्स समूह द्वारा प्रवर्तित न्यू डेवलपमेंट बैंक में शामिल हो गया है। नए अवसरों के खुलने से भारत ने यूरोपीय संघ (ई.यू.) के साथ बड़ी संख्या में अंतर्राष्ट्रीय-द्विपक्षीय समझौते किए हैं। भारत को प्रभावी ऑफसेटिंग गठबंधन बनाने के लिए मध्य एशियाई लोकतंत्र के साथ-साथ अन्य अंतर्राष्ट्रीय अभिनेताओं (Actors) के साथ रणनीतिक जुड़ाव को मजबूत करना चाहिए, जो भारत को उभरते हुए यूरोशियन स्वदेशी सुरक्षा (आर्मेचर) में एक केंद्रीय खिलाड़ी बना देगा। शंघाई सहयोग संगठन (एस.सी.ओ.) भारत को मध्य एशियाई लोकतंत्र और रूस के साथ इस क्षेत्र में अपने रणनीतिक हितों को आगे बढ़ाने के लिए काम करने का अवसर भी प्रदान करता है। भारत ने वैश्विक मंचों में एक प्रमुखता प्राप्त की है; यह दक्षिण-दक्षिण आदान-प्रदान को बढ़ावा देने में एक प्रमुख भूमिका निभा रहा है और ब्रिक्स में एक प्रभावशाली स्थिति प्राप्त की है। एक उभरती हुई वैश्विक शक्ति के रूप में, भारत ब्रिक्स, यूरोपीय संघ और एस.सी.ओ. के समान वर्तमान बहुध्रुवीय विश्व में एक महत्वपूर्ण



भूमिका निभाता है।

3.3 बहुध्रुवीयता क्या है?

एक बहुध्रुवीय विश्व वह है जहाँ एक या दो देशों के प्रभुत्व के बजाय शक्ति कई देशों में फैली हुई हो। शीत युद्ध की अवधि के दौरान, दुनिया को दो प्रमुख शक्ति ब्लॉकों में विभाजित किया गया था, जिसे कुछ प्रमुख नेतृत्वकर्ताओं ने 'द्विध्रुवीय' विश्व माना था। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि नई और विभिन्न वैश्विक शक्तियों का उदय हो रहा है, जो वैश्विक अनुरोधों और वैश्विक शासन दोनों में प्रभाव डालने में सक्षम है। बहुकेंद्र/बहुध्रुवीय दुनिया न केवल कई महान शक्तियों और उनके गठबंधनों द्वारा बल्कि नई और स्वदेशी शक्तियों, वैश्विक संघों, सामाजिक आंदोलनों और आतंकवादी नेटवर्क द्वारा भी आकार लेती है। एक बहुध्रुवीय दुनिया में लाभदायक अन्योन्याश्रयता बहुआयामी और जटिल है। एक बहुकेंद्रीय दुनिया में शासन की कई परतें होती हैं; क्षेत्रीय शक्तियाँ और संस्थाएँ एक द्विध्रुवीय या एकध्रुवीय दुनिया की तुलना में कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। (आचार्य, 2014)

बहुपक्षवाद ना तो अधिक सरल है और ना ही अधिक महत्वपूर्ण है। यह विवेकशीलता को एक नया महत्व देता है। यह एक उभरता हुआ बहुध्रुवीय विश्व है। इस उभरते हुए बहुध्रुवीय विश्व में सामान्यताओं और बहसों को विकसित करने के लिए माना जाता है। किसी भी देश को अपनी लाभदायक स्थिति को मजबूत करने या विकसित करने के लिए, उसे अपने दम पर बहुध्रुवीय विश्व में कदम रखना होगा। दुनिया के अग्रणी वैश्विक व्यापारिक ब्लॉक और लाभदायक शक्ति, यूरोपीय संघ, ब्रिक्स और एस.सी.ओ. के लिए एक उभरती हुई बहुध्रुवीय विश्व का क्या मतलब हो सकता है।

3.4 यूरोपीय संघ

“यूरोपीय संघ यूरोपीय कोयला और इस्पात समुदाय के रूप में शुरू हुआ, जिसे 1950 में शुरू किया गया था और इसमें केवल छह सदस्य बेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी, इटली, लक्ज़मबर्ग और नीदरलैंड थे। यह 1957 में रोम की संधि के तहत यूरोपीय आर्थिक समुदाय था और जो कि बाद में, यूरोपीय समुदाय (ईसी) बनकर उभरा। यूरोपीय समुदाय का प्रारंभिक ध्यान एक सामान्य कृषि नीति के साथ-साथ सीमा शुल्क की बाधाओं को खत्म करना था। यूरोपीय समुदाय मूल रूप से 1973 में विस्तारित हुआ, जब डेनमार्क, आयरलैंड और यूनाइटेड किंगडम इसके भाग बने। यूरोपीय संसद ने 1979 में प्रत्यक्ष रूप कार्यभार संभाला। 1986 में, एकल यूरोपीय अधिनियम ने विदेश नीति सहयोग के



सिद्धांतों को मजबूत किया और समुदाय के सदस्यों की शक्तियों का विस्तार किया। इस अधिनियम ने एकल यूरोपीय अनुरोध के विचार को भी समरूप बना दिया”।

3.4.1 यूरोपीय संघ के बारे में

- यूरोपीय संघ 28 सदस्यीय राज्य का एक राजनीतिक लाभप्रद संघ है, जो मुख्य रूप से यूरोप में स्थित है।
- यूरोपीय आयोग, यूरोपीय संघ की परिषद, यूरोपीय संघ की न्याय अदालत, यूरोपीय केंद्रीय बैंक, निर्णायकों की अदालत और यूरोपीय कांग्रेस जैसी संस्थाएँ इसके अधीन हैं। यूरोपीय कांग्रेस को यूरोपीय संघ के नागरिक द्वारा हर पाँच बार टैग किया जाता है।
- मास्ट्रिच सम्मेलन में 1993 में इसका वर्तमान नाम यूरोपीय संघ किया गया और यूरोपीय नागरिकता की शुरुआत हुई।
- लिस्बन का सम्मेलन 2009 में लागू हुआ, जो कि यूरोपीय संघ के स्वदेशी आधार में संशोधन करना चाहता है।

लक्ष्य

- यूरोपीय संघ का उद्देश्य यूरोपीय संघ के सभी नागरिकों की शांति, मूल्यों और भलाई को बढ़ावा देना है।
- आंतरिक सीमाओं के बिना स्वतंत्रता, सुरक्षा और न्याय प्रदान किया जा सके।
- संतुलित लाभदायक विकास और मूल्य स्थिरता पर आधारित सतत विकास, पूर्ण रोजगार और सामाजिक प्रगति, और पर्यावरण संरक्षण के साथ एक बड़े पैमाने पर प्रतिस्पर्धी अनुरोध मितव्ययिता को बनाये रखना।
- सामाजिक अस्वीकृति और सीमांकन का मुकाबला करना।
- वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति को बढ़ावा देना।
- यूरोपीय संघ के देशों के बीच लाभदायक, सामाजिक व क्षेत्रीय सामंजस्य और एकजुटता को बढ़ाना।
- इसकी समृद्ध कलात्मक और मौखिक विविधता का सम्मान करना।
- एक लाभदायक और वित्तीय संघ की स्थापना जिसकी मुद्रा यूरो है।



3.4.2 भारत-यूरोपीय संघ संबंध

यूरोपीय संघ एक आंतरिक कला के रूप में शुरू हुआ था। इसका उद्देश्य यूरोपीय देशों को आर्थिक और राजनीतिक रूप से एकजुट करके यूरोप में युद्ध को सुलझाने योग्य बनाना था। एक सामान्य यूरोपीय विदेश नीति का विचार हाल ही में आया है। पाँच या दस बरस पहले, यूरोपीय संघ एक शक्ति के रूप में उभरा था। इसने कमोबेश एकल अनुरोध को समाप्त कर दिया, एक सामान्य मुद्रा की शुरुआत की, जो एक क्रमिक विस्तार से गुजरी थी। यूरोपीय संघ वास्तव में एक बहुराष्ट्रीय संघ है और विश्व के बारे में इसका दृष्टिकोण बहुपक्षवाद का है।

“भारत-यूरोपीय संघ के संबंधों की शुरुआत 1960 के दशक में हुई थी, भारत 1962 में यूरोपीय आर्थिक समुदाय के साथ राजनीतिक संबंध स्थापित करने वाले प्राथमिक देशों में से एक था। 1993 में एक आम राजनीतिक रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किए गए थे और 1994 में यूरोपीय संघ व भारत के बीच सहयोग समझौते का भी विस्तार किया गया था। यूरोपीय संघ में व्यापार और वाणिज्यिक सहयोग के स्तंभों पर आधारित अधिक प्रभावी राजनीतिक संवाद और आवधिक लिपिक बैठकें होती हैं।”

भारतीय परिप्रेक्ष्य से देखें तो, यूरोपीय संघ भारत के साथ सहयोग शांति का समर्थन, रोजगार सृजन, लाभकारी विकास को बढ़ावा दे सकता है और सतत विकास को गति प्रदान कर सकता है। इस प्रकार, यूरोपीय संघ और भारत स्वाभाविक साथी की भाँति महसूस करते हैं और उन्हें खुलेपन का लाभ उठाने की आवश्यकता है।

संचार का उद्देश्य स्थायी आधुनिकीकरण और वैश्विक और स्वदेशी मुद्दों पर आम प्रतिक्रियाओं पर तेजी से यूरोपीय संघ-भारत रणनीतिक सहयोग को मजबूत करना है। संचार यूरोपीय संघ की बाहरी कार्रवाई की प्रभावशीलता को बनाए रखने का भी प्रयास करता है और वैश्विक रणनीति के असहज वातावरण में सामंजस्यपूर्ण है। यूरोपीय संघ भारत के सतत विकास का समर्थन करने में एक स्वाभाविक साथी है। टिकाऊ संरचना विकास, परिवहन गैर-पर्यवेक्षी फ्रेम, अप्रत्यक्ष मितव्ययिता, पर्यावरण संरक्षण और डिजिटलीकरण में यूरोपीय संघ के मोक्सी और प्रौद्योगिकी से संसाधन-प्रभावी मितव्ययिता के लिए भारत में जारी संक्रमण और वैश्विक कनेक्टिविटी को बढ़ाने में मदद मिलेगी। साथ ही उद्यमों को नए व्यवसाय और निवेश की पहलो से लाभ होगा।

भारत-यूरोपीय संघ के मध्य मुख्य रूप से विश्वास और एक जुनून रहा है ताकि भारत और



यूरोपीय संघ संयुक्त रूप से कनेक्टिविटी लागू कर सके जो कि प्रतिबद्धताओं, और स्थायी संपर्क के पारस्परिक रूप से सहमत सिद्धांतों पर आधारित है, जो अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता, कानून के शासन, अंतर्राष्ट्रीय के लिए सम्मान के अनुरूप है।

भारत और यूरोपीय संघ सामाजिक, लाभदायक, वित्तीय, जलवायु और पर्यावरणीय स्थिरता के साथ-साथ पारभासी, व्यवहार्यता, सुशासन और लाभदायक चालकों के लिए एक मंच प्रदान करने पर विशेष जोर देंगे। इसके साथ सभी कनेक्टिविटी कार्यक्रमों और आचरण के लिए संबंधित समुदायों के व्यक्त हितों के साथ संरेखण और अलग-अलग सामाजिक और पर्यावरणीय प्रभाव आकलन महत्वपूर्ण हैं। (स्रोत : भारत-यूरोपीय संघ कनेक्टिविटी साझेदारी, विश्व मामलों के मंत्रालय, भारत सरकार)

विदेश मंत्रालय के ईडब्ल्यू डिवीजन के अनुसार, कई बार शिखर सम्मेलनों ने यूरोपीय संघ के साथ सहयोग के लिए एक बहु-स्तरीय संस्थागत आर्मेचर का निर्माण किया है। पहला भारत-यूरोपीय संघ शिखर सम्मेलन 28 जून, 2000 को लिस्बन में आयोजित किया गया था, जिसने संबंधों के विकास में एक महत्वपूर्ण मोड़ को चिह्नित किया। तब से, भारत और यूरोपीय संघ के बीच चौदह आवधिक द्विपक्षीय शिखर सम्मेलन आयोजित किए गए हैं। 2004 में हेग में आयोजित 5वें भारत-यूरोपीय संघ शिखर सम्मेलन के दौरान सम्बन्धों को 'रणनीतिक साझेदारी' में अपग्रेड किया गया था। 14वाँ शिखर सम्मेलन 6 अक्टूबर, 2017 को नई दिल्ली में आयोजित किया गया था।

मंत्री जयशंकर ने कहा कि कनेक्टिविटी अब भारत और यूरोपीय संघ के बीच जुड़ाव के महत्वपूर्ण स्तंभों में से एक है। भौतिक संपर्क वैश्विक, पारदर्शी, व्यावसायिक रूप से व्यवहार्य, पर्यावरण के अनुकूल, समुदायिक रूप से उत्तरदायी होना चाहिए और देशों पर कर्ज का बोझ नहीं होना चाहिए। वाणिज्य इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि ज्ञान मितव्ययिता के लिए उपहार की समृद्धि की आवश्यकता होती है, जो बदले में व्यापार करने में आसानी और रचनात्मकता के विकास में मदद कर सकता है। डिजिटल कनेक्टिविटी भारत-यूरोपीय संघ के सहयोग का एक क्षेत्र भी हो सकता है, क्योंकि डेटा सुरक्षा, साइबर सुरक्षा और डेटा ज़ब्ती पर एक आवश्यक पहलू है। (स्रोत : भारत-यूरोपीय संघ संबंधों का भविष्य, ओ.आर.एफ. अन्वेषण)

भारत-यूरोपीय संघ रणनीतिक साझेदारी समीक्षा बैठकों के माध्यम से समग्र निगरानी के साथ प्रवचनों के माध्यम से कनेक्टिविटी स्थापना के तहत सहयोग करेगी। कनेक्टिविटी पार्टनरशिप का इरादा अंतर्राष्ट्रीय या घरेलू कानून के तहत किसी भी पक्ष के लिए काफी बाध्यकारी अधिकार या



दायित्व उत्पन्न करने का नहीं है। इसका माहौल भारत-यूरोपीय संघ 2025 रोडमैप के अनुरूप होगा।

एक उभरती हुई वैश्विक शक्ति के रूप में, भारत वर्तमान बहुध्रुवीय विश्व में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार, एक नियम-आधारित वैश्विक व्यवस्था बनाए रखने के लिए, यह महत्वपूर्ण है कि यूरोपीय संघ और भारत प्रभावी बहुपक्षवाद और वैश्विक लाभदायक शासन लागू करें। दुनिया के दो सबसे बड़े गणराज्य के मध्य राजनीतिक, लाभदायक, सुरक्षा, समुद्री और रक्षा सहयोग को बढ़ाकर, भारत और यूरोपीय संघ के बीच संवाद बढ़ाया जा सकता है। भारत और यूरोपीय संघ के बीच बहुध्रुवीयता विश्व को मुख्य लोकप्रिय मूल्यों को बनाये रखने के लिये एक नई प्रणाली दे सकता है। बदलते नियमों के साथ इस बदलती विश्व व्यवस्था में, भारत-यूरोपीय संघ के संबंधों को एक नई प्रेरणा देने के लिए उपयुक्त नैतिकता और ढाँचे के साथ एक नई 'कॉम्पैक्ट' की खोज की जा सकती है। (स्रोत : भारत-यूरोपीय संघ संबंधों का भविष्य, ओआरएफ अन्वेषण)

अंत में, मंत्री जयशंकर और मंत्री सिल्वा ने वैश्विक व्यवस्था में हो रहे प्रमुख संरचनात्मक और प्रणालीगत परिवर्तनों के साथ भारत-यूरोपीय संघ के संबंधों के महत्व पर सहमति व्यक्त की। भारत और यूरोपीय संघ राजनीतिक, लाभदायक, सुरक्षा, समुद्री और रक्षा सहयोग को बढ़ाकर दुनिया के दो सबसे बड़े गणराज्यों के बीच संवाद बढ़ा सकते हैं। बहुध्रुवीयता के उदय के साथ, भारत, यूरोपीय संघ, ब्रिटेन और अमेरिका के बीच एक 'त्रिकोण' मूल लोकप्रिय मूल्यों को प्राप्त करते हुए इस वास्तविकता को संबोधित करने के लिए एक नई प्रणाली दे सकता है। बदलते नियमों के साथ इस बदलती विश्व व्यवस्था में, भारत-यूरोपीय संघ के संबंधों को एक नई प्रेरणा देने के लिए उपयुक्त नैतिकता और ढाँचे के साथ एक नई 'कॉम्पैक्ट' की खोज की जा सकती है। (स्रोत : भारत-यूरोपीय संघ संबंधों का भविष्य, ओ.आर.एफ. अनुसंधान)

3.4.3 भारत के लिए यूरोपीय संघ का महत्व

भारत उन 10 देशों में से एक है, जिसे यूरोपीय संघ (ई.यू.) ने अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में एक रणनीतिक भागीदार के रूप में चुना है, जो एक उचित विकल्प है क्योंकि भारत दुनिया में सबसे अधिक आबादी वाला लोकतंत्र है। आर्थिक और राजनीतिक दोनों तरह से यूरोपीय संघ के लिए इस एशियाई दिग्गज का महत्व निर्विवाद है। भारत 2013 में 72.7 मिलियन यूरो के कुल व्यापार के साथ इसका 10वां सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है। "यूरोपीय संघ भारत का तीसरा सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है, जिसका 2020 में माल व्यापार में €62.8 बिलियन था या चीन (12%) और अमेरिका (11.7%) के



बाद कुल भारतीय व्यापार का 11.1% हिस्सा है। यूरोपीय संघ संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद भारतीय निर्यात (कुल का 14%) के लिए दूसरा सबसे बड़ा गंतव्य है। भारत की विदेश नीति धीरे-धीरे गुटनिरपेक्षता, विकासशील देशों के साथ आत्म-पहचान और पश्चिम के प्रति अविश्वास के दर्शन से विकसित हो रही है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि सोवियत संघ के पतन, भारत की स्थिति अमेरिका और यूरोपीय संघ के करीब आ गई है, फिर भी, भारत का गुटनिरपेक्ष अतीत अभी भी इसकी अंतर्राष्ट्रीय भूमिका में एक सीमित कारक प्रतीत होता है। इसके अलावा, भारत मुख्य रूप से घरेलू मामलों पर केंद्रित रहा है, जिसमें आर्थिक विकास पर ध्यान देने योग्य है।

यूरोपीय संघ ने आधी सदी से अधिक समय से शांति, स्थिरता और समृद्धि प्रदान की है और जीवन स्तर को बढ़ाने में मदद की है और एक एकल यूरोपीय मुद्रा: यूरो लॉन्च की है। इससे अधिक 19 देशों के 340 मिलियन यूरोपीय संघ के नागरिक अब इसे अपनी मुद्रा के रूप में उपयोग करते हैं और इसके लाभों का आनंद लेते हैं। इसी अवधि के दौरान, यूरोपीय संघ से भारत का कृषि आयात 629.159 मिलियन अमेरिकी डॉलर रहा। भारत के प्रमुख आयात मट्ठा, वनस्पति बीज, जैतून का तेल, लैक्टोज और लैक्टोज सिरप, चॉकलेट और अन्य खाद्य सामग्री, शराब, पशु चारा तैयार करना आदि, मसाले, कछुये की खाल, कीमती पत्थर और मोती, जैसे जायफल, लोंग और दालचीनी थे। लोंग, काली मिर्च, दालचीनी और इलायची जैसे मसालों का उत्पादन भारत में होता था और इन सभी मसालों की यूरोप में काफी माँग थी। ये मुख्य कारण हैं कि यूरोपीय व्यापारिक कंपनियाँ भारत पर ध्यान दे रही थीं। इस प्रकार भारत के लिए भी यूरोपीय संघ के आयात निर्यात के लिए महत्वपूर्ण हैं।

अगर हम मुक्त व्यापार समझौते (एफ.टी.ए.) की बात करें तो इससे न केवल भारत-यूरोपीय संघ के व्यापार और संबंधों में वृद्धि होगी बल्कि सहयोग के सभी क्षेत्रों में एक अधिक संतुलित एजेंडा और एक मजबूत साझेदारी भी होगी। यूरोपीय संघ को ऊर्जा, मानवाधिकार, जलवायु परिवर्तन और शांति और सुरक्षा जैसे मुद्दों पर द्विपक्षीय वार्ता और सहयोग को भी मजबूत करना चाहिए। इसके अलावा, यूरोपीय संघ को यह ध्यान में रखना चाहिए कि अपने तटों की विशाल लंबाई को देखते हुए, भारत समुद्री सुरक्षा और समुद्री डकैती का मुकाबला करने में एक प्रमुख प्राकृतिक भागीदार है। अंतर्राष्ट्रीय संकटों के प्रबंधन में भी भारत का महत्वपूर्ण योगदान है।

साथ ही, 2018 में, यूरोपीय संघ ने भारत के साथ सहयोग के लिए एक नई रणनीति जारी की, इसे एक बहुध्रुवीय एशिया में एक भू-राजनीतिक मुख्य आधार कहा गया, जो इस क्षेत्र में शक्ति



संतुलन बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। भारत सुरक्षा के नजरिए से नहीं तो भू-आर्थिक रूप से, हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में संलग्न होने के लिए यूरोपीय संघ के देशों का अनुसरण कर सकता है। यह क्षेत्रीय बुनियादी ढाँचे के सतत विकास के लिए भारी आर्थिक संसाधन जुटा सकता है, राजनीतिक प्रभाव को नियंत्रित कर सकता है और, हिन्द-प्रशांत प्रवचन को आकार देने के लिए अपनी महत्वपूर्ण सॉफ्ट पावर को शक्ति प्रदान कर सकता है।

यूरोपीय संघ को अपनी विदेश नीति की अनिवार्यताओं के भू-राजनीतिक निहितार्थों से जुड़ने के लिए मजबूर किया जा रहा है और भारत हिंद-प्रशांत क्षेत्र में मजबूती लाने के लिए समान विचारधारा वाले देशों के साथ महत्वपूर्ण साझेदारी की तलाश कर रहा है। इसके अलावा, भारत अमेरिका और चीन के बीच द्विध्रुवीय भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा से परे देख रहा है और एक बहु-ध्रुवीय दुनिया की स्थापना की दिशा में काम कर रहा है। जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में, यूरोपीय संघ 2050 तक अपने कार्बन उत्सर्जन को कार्बन-तटस्थ बनाने के लिए ग्रीन डील नामक एक नई औद्योगिक रणनीति अपना सकता है। यूरोपीय संघ और भारत स्वच्छ ऊर्जा में निवेश करके 2050 तक कार्बन-तटस्थ अर्थव्यवस्थाओं में संक्रमण का प्रयास कर सकते हैं। भारत में नवीकरणीय ऊर्जा के उपयोग को बढ़ाने के भारत के प्रयासों में यूरोप का निवेश और प्रौद्योगिकी सर्वोपरि है।

3.4.4 यूरोपीय संघ-भारत शिखर सम्मेलन

पहला भारत-यूरोपीय संघ शिखर सम्मेलन जून 2000 में लिस्बन में हुआ था और जो कि संबंधों के विकास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था।

लिस्बन संधि के लागू होने के बाद 12वाँ शिखर सम्मेलन भारत में आयोजित होने वाला पहला शिखर सम्मेलन था। "प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह ने भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व किया, जबकि यूरोपीय संघ का प्रतिनिधित्व यूरोपीय परिषद के अध्यक्ष श्री हरमन वान रोमपुय और यूरोपीय आयोग के अध्यक्ष श्री जोस मैनुअल बारोसो ने किया। दोनों पक्षों ने द्विपक्षीय संबंधों की समीक्षा की और साथ ही क्षेत्रीय और वैश्विक मुद्दों पर विचारों का आदान-प्रदान किया। नेताओं ने द्विपक्षीय व्यापार और निवेश समझौते पर बातचीत की गहनता पर संतोष व्यक्त किया, सुरक्षा के क्षेत्र में बढ़े हुए सहयोग का स्वागत किया और परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग में अनुसंधान एवं विकास सहयोग पर एक समझौते को अंतिम रूप देने का आह्वान किया। दोनों पक्षों ने सांख्यिकी पर एक समझौता जापान पर भी हस्ताक्षर किए और अनुसंधान और नवाचार सहयोग और ऊर्जा में संवर्धित



सहयोग पर संयुक्त घोषणाएँ जारी कीं। 13वाँ शिखर सम्मेलन 2013 में ब्रसेल्स में आयोजित किया जाना था। यह ऐसे समय में और भी सही है, जब तेजी से बदलती दुनिया में एकजुटता और प्रभावी बहुपक्षीय समाधानों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए, COVID-19 महामारी ने वैश्विक धुवीकरण को तेज कर दिया है। प्राथमिक रूप से यूरोप और भारत संयुक्त राष्ट्र और विश्व व्यापार संगठन के साथ नियम-आधारित बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को बनाए रखने में रुचि रखते हैं। इसलिए, उन्हें न केवल अपनी व्यापार वार्ता को अगले स्तर तक ले जाना चाहिए, बल्कि मौजूदा बहुपक्षीय ढाँचे की एक स्पष्ट समीक्षा करने के लिए सेना में शामिल होना चाहिए, जिसका उद्देश्य एक निष्पक्ष और अनुमानित वैश्विक व्यापार वातावरण को रेखांकित करना है। इसके बाद, अमेरिका के पेरिस जलवायु समझौते से बाहर निकलने के साथ, भारत और यूरोपीय संघ को जलवायु परिवर्तन, स्वच्छ ऊर्जा, या परिपत्र अर्थव्यवस्था जैसे वैश्विक शासन मामलों पर संयुक्त नेतृत्व से लाभ होगा। प्रतिबद्धता वक्तव्यों से संयुक्त कार्रवाई की ओर बढ़ते हुए इन मुद्दों पर सहयोग को अगले स्तर पर ले जाना चाहिए। अंत में, भारत और यूरोपीय संघ को उभरती प्रौद्योगिकियों के विनियमन से लेकर डिजिटल अर्थव्यवस्था तक, साइबर सुरक्षा से लेकर वैश्विक सार्वजनिक स्वास्थ्य सुरक्षा तक, आज की प्रमुख चुनौतियों के बहुपक्षीय समाधानों पर चर्चा का नेतृत्व करना चाहिए। इन मामलों पर, भारत और यूरोपीय संघ के पास निष्पक्ष चर्चा और संवाद के लिए मानक निर्धारक होने की साख है। यूरोपीय संघ-भारत शिखर सम्मेलन 2020 से शुरू होकर, उन्हें अपने सहयोगियों और वैश्विक समुदाय को अपने दृष्टिकोण का पालन करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

जैसा कि COVID-19 महामारी और उसके बाद अमेरिका और चीन के बीच तनाव बंधा है, जिस कारण बहुपक्षीय विश्व व्यवस्था में सुधार और पुनर्निर्माण के प्रयास अभी शुरू हो रहे हैं। भारत और यूरोपीय संघ सबसे बड़े लोकतंत्र होने और कुछ सबसे पुराने लोकतंत्रों का आश्रय होने के नाते इस प्रयास का नेतृत्व करने के लिए एक अद्वितीय स्थिति में हैं। अब यूरोपीय संघ और भारत के लिए सहयोग बढ़ाने, अपने संवाद को मजबूत और गहरा करने का समय है, और एक नियम-आधारित वैश्विक व्यवस्था की रक्षा करने की दिशा में काम करना है, जो सतत विकास, सुरक्षा और स्थिरता को सुविधाजनक बनाता है। जैसा कि भारत 2023 में G20 की मेजबानी करने की तैयारी कर रहा है, 15 जुलाई को होने वाला वर्चुअल इंडिया-ई.यू. शिखर सम्मेलन भारत को उभरती हुई विश्व व्यवस्था में एक बड़ी और अधिक विविध भूमिका के लिए खुद को संरेखित करने की दिशा में एक कदम है।



3.5 निष्कर्ष

एस.सी.ओ. का पूर्ण सदस्य होने के नाते, भारत चीन की प्रेरित पहल 'वन बेल्ट, वन रोड' और 'चाइना पाकिस्तान इकोनॉमिक कॉरिडोर' (सी.पी.ई.सी.) के साथ कुशलता से समझौता करने के लिए अपनी नीति की योजना बनाने की स्थिति में होगा। वैसे अंतर्राष्ट्रीय उत्तर-दक्षिण परिवहन गलियारे (INSTC) का संकुचन संभवतः भारत के लिए उच्च महत्व की पुष्टि कर सकता है, क्योंकि यह भारत, रूस, ईरान, यूरोप और मध्य एशिया के बीच माल ढुलाई के लिए जहाज, रेल और सड़क संपर्क प्रदान करता है। इसके अलावा, एस.सी.ओ. की सदस्यता बहुपक्षीय वैश्विक व्यवस्था के प्रवर्तक के रूप में भारत की स्थिति को और मजबूत करेगी।

यूरोपीय संघ-भारत पर्यवेक्षकों ने अफसोस जताया कि पिछले कुछ वर्षों में द्विपक्षीय संबंध सुस्त रहे हैं, जो कि गलत है। ई.यू. इंडिया क्लीन एनर्जी एंड क्लाइमेट पार्टनरशिप और स्मार्ट एंड सस्टेनेबल अर्बनिज्म पर पार्टनरशिप दोनों को 2016 में लॉन्च किया गया था और स्मार्ट ग्रिड, लागत प्रभावी अपतटीय पवन ऊर्जा, और नेट-जीरो एनर्जी बिल्डिंग, एनर्जी स्टोरेज, एडवांस्ड बीफौल्स आदि पर सहयोग का समर्थन किया गया था। हालाँकि, आगे बढ़ते हुए, वैश्विक जलवायु और ऊर्जा संक्रमण के लिए भारत और यूरोपीय संघ दोनों की आवश्यकता होगी। दोनों को आपस में पहले से कहीं अधिक सहायता करना और जलवायु कार्रवाई और कूटनीति पर बढ़ते सहयोग को दोनों ही द्विपक्षीय संबंधों के लिए सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। औद्योगिक डीकार्बराइजेशन और न्यायसंगत संक्रमण पर सहयोग तत्काल अन्वेषण के दो क्षेत्र हैं। भारत और यूरोपीय संघ के पास अपनी मुलाकात के मूल सिद्धांतों पर जाने का एक नया अवसर है।

अध्ययन के अनुसार, शिखर स्तर इंटर-ब्रिक्स सहयोग का विस्तार कर रहा है, जो वैश्विक स्थिरता, विकास और सहयोग के लिए फायदेमंद है। वैश्विक मंदी के दौरान गठित ब्रिक्स ने अपने सहयोग के क्षेत्रों का विस्तार किया है, अंतर्राष्ट्रीय शासन परिवर्तन और बहु-क्षेत्रीय भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए बहस और समन्वय के लिए एक मंच तैयार किया है। ब्रिक्स छठे शिखर सम्मेलन के बाद से सामाजिक प्रगति को बढ़ावा देने, विशेष रूप से गरीबी और असमानता को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के करीब पहुँच गया है। जबकि आई.एम.एफ. और विश्व बैंक में सुधार पर अधिक जोर दिया जाता है क्योंकि ब्रिक्स ने जी.एफ.सी. के दौरान वैश्विक शासन प्रक्रियाओं में कुछ चुनौतियों का समाधान करने के लिए गठबंधन बनाया है, संयुक्त राष्ट्र सुधार, विशेष रूप से



यू.एन.एस.सी. में स्थायी सदस्यता का विस्तार का उल्लेख एवं विकास के संदर्भ में ब्रिक्स की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि एन.डी.बी., सी.आर.ए. और ए.आर.सी. सहित संस्थागत तंत्र के निर्माण में देखी जा सकती है। संस्थागतकरण की इस प्रक्रिया में, विशेष रूप से एन.डी.बी. के विकास में भारत की भूमिका उल्लेखनीय है। भारत ने विभिन्न कार्यशालाओं, बैठकों और अन्य संबंधित कार्यक्रमों का आयोजन करके मंच के अधिक संस्थागतकरण की सुविधा प्रदान की है।

3.6 अभ्यास प्रश्न

1. भारत और ब्रिक्स महत्व के बारे में बताएँ।
2. आपके अनुसार भारत में यूरोपीय संघ की क्या उपयोगिता है।
3. ब्रिक्स, यूरोपीय संघ और शंघाई सहयोग संगठन बहुध्रुवीय दुनिया में भारत के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समझाइए।

3.7 संदर्भ-सूची

- Appadorai, A. (1981). *The Domestic Roots of India's Foreign Policy*, New Delhi: Oxford University Press.
- Bandyopadhyaya, J. (2003). *The Making of India's Foreign Policy*, New Delhi: Allied Publishers.
- Choudhury, S.R. (2015). "India–Japan relations: the economic advantage". *Indian Foreign Affairs Journal*, 10(3), 268–83.
- Dixit, J. N. (2010). *India's Foreign Policy and its Neighbours*, New Delhi: Gyan Publishing House, 2010.
- https://www.mea.gov.in/Portal/ForeignRelation/India-EU_Relations.pdf
- <https://www.mea.gov.in/Portal/ForeignRelation/India-EUBBMay21.pdf>



भारत और पड़ोस : मुद्दे और चुनौतियाँ

चंद्रिमा

अनुवादिका : डॉ. विनी शर्मा

संरचना

- 1.1 उद्देश्य
- 1.2 परिचय
- 1.3 सीमा विवाद
- 1.4 प्रवासन और शरणार्थी मुद्दे
- 1.5 सीमा पार आतंकवाद
- 1.6 सारांश
- 1.7 निष्कर्ष
- 1.8 शब्दावली
- 1.9 अभ्यास-प्रश्न
- 1.10 संदर्भ-सूची

1.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी निम्नलिखित को समझने में समक्ष हो सकेंगे-

1. भारतीय पड़ोस में विभिन्न मुद्दों और चुनौतियों को।
2. भारत के सामने विभिन्न प्रकार की सामाजिक और आंतरिक सुरक्षा चुनौतियों को।
3. भारतीय विदेश नीति चीन के साथ सीमा विवाद और पाकिस्तान से सीमा पार आतंकवाद का जवाब कैसे देती है?



4. प्रवासन और शरणार्थियों के मुद्दे ने पूर्वोत्तर भारत में सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया को कैसे प्रभावित किया है?

1.2 परिचय

सीमा विवाद, जातीय संघर्ष, सीमा-पार आतंकवाद; विकासशील राज्यों की परिधि में पलायन और विद्रोह आम घटना बन गई है। युद्ध के बाद की अवधि में विभिन्न ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, रणनीतिक और भू-राजनीतिक कारणों से भारतीय पड़ोस में इन घटनाओं में धीरे-धीरे वृद्धि देखी गई। अवांछनीय घटना दुनिया के विभिन्न हिस्सों में व्यापक रूप से प्रचलित है। इसमें बहुमूल्य जीवन खो गया है, कई निर्दोष नागरिक जो किसी भी प्रकार के आंदोलन में शामिल नहीं होते हैं, वे इन सीमा विवादों, प्रवासन संकट और सीमा पार आतंकवाद के मुख्य पीड़ित हैं।

भारत की भौगोलिक स्थिति बहुत अनूठी है क्योंकि यह दक्षिण एशिया के प्रमुख देशों के साथ सीमा साझा करता है। भारत अपने अधिकांश पड़ोसी देशों के साथ समान सांस्कृतिक, भाषाई और ऐतिहासिक संबंध भी साझा करता है। भारत अपने कई पड़ोसी देशों जैसे श्रीलंका और अन्य राज्यों के साथ ब्रिटिश साम्राज्य के तहत औपनिवेशिक शासन के अधीन था। जबकि नेपाल और भूटान अंग्रेजों के अधीन संरक्षित राज्य थे। अपनी आबादी, सैन्य ताकत, आर्थिक विकास और प्राकृतिक संसाधनों के साथ अपने विशाल आकार के बाद भी, भारत अपने निकटतम पड़ोसियों के साथ घनिष्ठ संबंध बनाने के मामले में नुकसान में रहा है। इनमें से अधिकांश देश भारत की तुलना में, आकार में छोटे थे और वे भारत के बारे में राजनीतिक रूप से आशंकित थे। इसके अलावा, सीमा विवाद, प्रवासन मुद्दों, जल साझाकरण की समस्याओं और शरणार्थी संकट जैसे कई अन्य ऐतिहासिक और सामाजिक-राजनीतिक कारकों के कारण भारतीय पड़ोसी राज्यों ने इन चुनौतियों को चिह्नित किया है। हालाँकि जब से भारत को आजादी मिली है, इसने किसी भी अन्य बाहरी शक्ति को उनके मामलों और क्षेत्रों में हस्तक्षेप करने से रोकने की कोशिश की है, लेकिन पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल और बांग्लादेश जैसे पड़ोसी देशों ने इस क्षेत्र की ओर अन्य प्रमुख शक्तियों का ध्यान आकर्षित किया है।

चीन के साथ भारत के संबंध, सीमा विवाद से लगातार प्रभावित होते रहे हैं और यह भारत के लिए एक बड़ी चिंता का विषय रहा है। इसके अलावा, सीमा के मुद्दों पर ही चीन द्वारा अतिक्रमण का स्तर और हस्तक्षेप पिछले वर्षों में भारत के लिए चिंता का विषय रहा है, जिसमें



देपसांग (2013), चुमार (2014), डोकलाम (2017), गलवान (2020) और लद्दाख (2021) शामिल हैं और ये घटनाएँ भी तब हुई हैं जब दोनों पक्ष लगातार उच्च स्तर के दौरे कर रहे थे; यहाँ तक कि जब पीएम मोदी और शी पिछले वर्षों में 10 से अधिक बार मिल चुके हैं। इसी तरह के भूमि विवाद भारत ने देखे हैं जो पाकिस्तान और बांग्लादेश द्वारा भारत के साथ भूमि सीमा के निपटारे पर किए गए हैं। इनमें से कई विवादों को भारतीय नेतृत्व और कूटनीति के राजनीतिक और शासन कौशल द्वारा समय के साथ हल किया गया है, हालाँकि ये मुद्दे भारत के लिए प्रमुख चिंताएँ रहे हैं। इन सभी घटनाओं का प्रमुख परिणाम भारत और पड़ोसी देशों के बीच द्विपक्षीय संबंधों में लगातार घर्षण रहा है, जिसके कारण सहयोग और संवाद की कमी हुई है। इसका दक्षिण एशियाई देशों के बीच व्यापक एकजुटता और सहयोग पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इन सभी मुद्दों के बावजूद, भारत ने सीमावर्ती राज्यों के साथ संबंधों को मजबूत करने का लगातार प्रयास किया है और प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भारत की 'एकट ईस्ट नीति' और 'पड़ोस पहले' नीति ने इस प्रक्रिया की दिशा में नए कदम उठाए हैं।

थॉमस नेल (2016) की पुस्तक, *सीमा का सिद्धांत*, विभिन्न प्रकार की सीमाओं की संरचना और कार्यों को समझने के लिए एक सैद्धांतिक रूपरेखा देता है। लेखक के अनुसार, सीमा की एक आम परिभाषित विशेषता दुनिया में किसी प्रकार के सामाजिक विभाजन की शुरुआत है। सीमाओं से रहित जो हम देखते हैं वह "पृथ्वी" या "दुनिया" है। सामाजिक विभाजन राज्यों की उत्पत्ति से पहले होता है। यह सीमा की प्रक्रिया है जिसने राज्यों का निर्माण किया, सीमा का एक कार्य विभाजन द्वारा गुणन है न कि इसके विपरीत। विभाजन, जो इतिहास की एक निरंतर प्रक्रिया का परिणाम है, गुणात्मक विचलन भी पैदा करता है, जिससे कुछ विशिष्ट सामाजिक संरचनाओं को जन्म मिलता है। विभिन्न गुणात्मक संस्थाओं की प्रस्तुतियाँ सीमा अध्ययन के लिए बहु-विषयक होने की गुंजाइश प्रदान करती हैं, जिसमें नृविज्ञान, समाजशास्त्र, इतिहास, राजनीति विज्ञान, अंतर्राष्ट्रीय कानून आदि शामिल हैं। पुस्तक विभिन्न विषयों के लिए प्रासंगिक और उपयोगी दार्शनिक अवधारणाओं पर चर्चा करती है। सीमाओं की आवाजाही भौतिक, भू-रूपात्मक और साथ ही राजनीतिक कारकों के कारण होती है, बाद में इसमें क्षेत्रीय और संघर्ष के अन्य रूप शामिल होते हैं। एक और कारक यह है कि सीमाएँ लोगों के कुछ प्राकृतिक प्रवाह को प्रतिबंधित या विभाजित करके कार्य करती हैं, लेकिन सीमाएँ भी हर किसी को सीमा में रखने में सफल नहीं हुई हैं, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में रहने वाली सीमा आबादी को अक्सर अलग-अलग संप्रभु क्षेत्रों के साथ विभाजित किया जाता है।



1.3 सीमा विवाद

भारत-चीन सीमा वार्ता का इतिहास 1960 के दशक से जुड़ा हुआ है, जो नेहरू और झोउ एनलाई के दौर से है। संभवतः सीमा मुद्दे पर दोनों देशों के बीच इस तरह की पहली 'औपचारिक चर्चा' अप्रैल, 1960 में झोउ एनलाई की भारत यात्रा के दौरान नई दिल्ली में आयोजित की गई थी। ये वार्ता मतभेदों को हल करने में विफल रही, जैसा कि नई दिल्ली में झोउ एनलाई द्वारा आयोजित 25 अप्रैल 1960 के प्रेस सम्मेलन में व्यक्त किया गया था। मतभेदों को देखते हुए, दोनों देशों ने अब सीमा मुद्दे पर बातचीत शुरू करने का फैसला किया। 1960 में बीजिंग और रंगून में भी ऐसी दो चर्चाएँ हुईं, लेकिन दोनों देशों के बीच 1962 के युद्ध के प्रकोप ने अगले दो दशकों के लिए सीमा मुद्दे पर चल रही वार्ता को रोक दिया।

जून 1981 में जब चीनी विदेश मंत्री हुआंग हुआ ने नई दिल्ली का दौरा किया तो इस विषय को कुछ महत्व दिया गया था। 1981 से 1987 तक सात और दौर आयोजित किए गए, लेकिन 'भारत-चीन सीमा विवाद के समाधान के लिए सामान्य आकांक्षाओं को व्यक्त करने के बावजूद' कुछ भी ठोस हासिल नहीं हुआ या सहमति नहीं बनी। सीमा विवाद ने फिर से ध्यान आकर्षित किया जब दोनों देश इस मुद्दे को हल करने के लिए 1988 में संयुक्त कार्य समूह (जेडब्ल्यूजी) बनाने पर सहमत हुए। 1988 से 2003 तक जेडब्ल्यूजी तंत्र के तहत लगभग 15 दौर की वार्ताएँ आयोजित की गईं। विश्वास बहाली के उपायों (सीबीएम) ने जेडब्ल्यूजी की शुरुआती वार्ता के एजेंडे को प्रभावित किया, लेकिन 1999 के बाद वास्तविक नियंत्रण रेखा (एलएसी) के स्पष्टीकरण पर ध्यान केंद्रित किया गया। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की चीन यात्रा के बाद 2003 में दोनों देशों के बीच सीमा वार्ता को विशेष प्रतिनिधि (एसआर) के मौजूदा तंत्र में बदल दिया गया था। इस बीच, 1993 का सीमा शांति और शांति समझौता (बीपीटीए) दोनों देशों के बीच बातचीत के माध्यम से द्विपक्षीय रूप से समस्याओं को हल करने के लिए एक बड़े ढाँचे के रूप में रहा है। बीपीटीए वास्तविक नियंत्रण रेखा (एलएसी) को एक सामान्य सीमा में बदलने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम था, क्योंकि सबसे पहले इसने दोनों सशस्त्र बलों के आचरण के विशिष्ट तरीकों के माध्यम से शांति को बढ़ावा देने की माँग की, और दूसरा सीमा तैनाती बलों में कमी का आह्वान भी किया।

चीनी पक्ष के लिए, पिछले पाँच दशकों से अधिक समय में दोनों देशों के बीच सीमा मुद्दे पर मतभेदों पर स्वीकार करना और बाद में चर्चा करना भारत और चीन के बीच सीमा बनाने वाली मैक



मोहन रेखा की अस्वीकृति और उसकी घोषित स्थिति को कमोबेश औपचारिक रूप देना है। जबकि भारत के लिए चीन के हाथों अपना क्षेत्र खोना (1962) और संप्रभुता पर उसकी चिंताएँ राष्ट्रीय हितों की वैध अभिव्यक्ति बनी हुई हैं। दिलचस्प बात यह है कि जिसे आमतौर पर भारत और चीन के बीच 'सीमा विवाद' के रूप में जाना जाता है, वह अपने सीमावर्ती क्षेत्रों के प्रति दो बहुत अलग-अलग स्थितियों में प्रकट होता है, जिसने इतिहास और औपनिवेशिक विरासत की ताकतों द्वारा आकार लिया।

2003 की सीमा वार्ता के बाद से विशेष प्रतिनिधि (एसआर) ने भारत-चीन द्विपक्षीय संबंधों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पिछले कुछ वर्षों में उन्होंने दोनों के बीच 4,057 किलोमीटर लंबी वास्तविक नियंत्रण रेखा (एलएसी) पर किसी भी बड़ी हिंसा को रोकने में मदद करने में 'महत्वपूर्ण भूमिका' निभाई है। एलएसी विवादित बनी हुई है क्योंकि दोनों पक्षों की इतिहास और औपनिवेशिक विरासत के आधार पर अलग-अलग धारणाएँ हैं। बहरहाल, सीमा पर 'सापेक्ष स्थिरता' बनाए रखने में सीमा वार्ता की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है। पिछले कुछ वर्षों में एसआर वार्ता, सीमा मुद्दों पर दोनों देशों के बीच कुछ समझौतों तक पहुँचने में सक्षम रही है। 2005 में, दोनों पक्ष सीमा विवाद के समाधान के लिए 'राजनीतिक मापदंडों और मार्गदर्शक सिद्धांतों' पर एक समझौते पर पहुँचे। तब से दोनों पक्ष सीमा समाधान (दूसरे दौर) के लिए एक रूपरेखा पर बातचीत कर रहे हैं, इसके बाद सीमा का वास्तविक सीमांकन (तीसरा दौर) है।

उल्लेखनीय है कि दोनों पक्ष 2012 में इस बात पर सहमत हुए थे कि सभी चीन-भारत सीमा विवादों (भूटान, म्यांमार और अरुणाचल प्रदेश के साथ) को तीसरे पक्ष के परामर्श से संबोधित किया जाएगा। पिछले साल जुलाई 2017 में दोनों देशों के बीच डोकलाम गतिरोध के दौरान भारत ने सिक्किम सेक्टर में भारत-चीन सीमा संरेखण पर विशेष प्रतिनिधियों (एसआर) के बीच 2012 के लिखित संवाद का लगातार उल्लेख किया था, जिसमें मौजूदा यथास्थिति को एकतरफा तरीके से बदलने के चीनी पक्ष के प्रयासों पर आपत्ति जताई गई थी।

भारत और बांग्लादेश, वर्तमान में दो स्वतंत्र राज्य हैं, जिनका प्राचीन काल से एक साझा सामाजिक-राजनीतिक इतिहास रहा है। भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान दोनों देशों के लोग और भौगोलिक क्षेत्र एक ही राजनीतिक प्राधिकरण के अधीन थे। वर्तमान बांग्लादेश भारत के औपनिवेशिक शासन के अंत तक बंगाल के ब्रिटिश प्रांत का हिस्सा था और 1947 में भारत के दो संप्रभु स्वतंत्र



राज्यों भारत और पाकिस्तान में विभाजन हुआ। 1947 में अस्तित्व में आए पाकिस्तान के नए राज्य में दो विंग थे, अर्थात् पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान। बाद में, 1971 में, पूर्वी पाकिस्तान एक स्वतंत्र राज्य के रूप में उभरा, अर्थात् पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ बांग्लादेश पूर्वी पाकिस्तान के लोगों द्वारा अपने पश्चिमी विंग में स्थित पाकिस्तान राज्य के शक्ति केंद्र के खिलाफ छोड़े गए मुक्ति युद्ध के कारण। पाकिस्तान से बांग्लादेश के अलग होने से साबित हो गया था कि राष्ट्र राज्य के गठन के लिए धर्म एकमात्र मानदंड नहीं हो सकता है। पाकिस्तान के निर्माण की शुरुआत से ही, भाषा और अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास के आधार पर इसके पश्चिमी और पूर्वी विंग के लोगों के बीच विरोधाभास थे। हालाँकि, अविभाजित भारत से पाकिस्तान/बांग्लादेश का प्रारंभिक अलगाव मुख्य रूप से धर्म पर आधारित था, क्योंकि पाकिस्तान का निर्माण अविभाजित भारत के उत्तर-पश्चिम और पूर्वी हिस्सों में सन्निहित मुस्लिम बहुसंख्यक क्षेत्रों को पाकिस्तान के एक नए स्वतंत्र राज्य में बनाकर किया गया था।

1947 के विभाजन के बाद, भारत ने पूर्वी पाकिस्तान (बाद में बांग्लादेश) के साथ 4069 किलोमीटर की भूमि सीमा और 180 किलोमीटर की समुद्री सीमा साझा की। 4069 किलोमीटर भूमि सीमा में से 2,216 किलोमीटर पश्चिम बंगाल में हैं; त्रिपुरा में 856 किलोमीटर, मेघालय में 443 किलोमीटर, मिजोरम में 318 किलोमीटर और असम में 262 किलोमीटर (श्रीराधा दत्ता 2003)। भारत और पाकिस्तान के बीच सीमा का सीमांकन दो सीमा आयोगों (बीसी) के निर्णयों पर आधारित था, एक पंजाब के विभाजन के लिए और दूसरा बंगाल के विभाजन के लिए।

ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त सर सिरिल रैंडक्लिफ ने दोनों बीसी का नेतृत्व किया। रैंडक्लिफ 1947 में उस उद्देश्य के लिए भारत आए, जिससे पहले वह कभी भी भारत नहीं गए थे (सुमंत बनर्जी, 2001)। कई तबकों से इस बात की आलोचना हो रही है कि उन्होंने बंगाल को विभाजित करने के लिए जिस सीमा रेखा का फैसला किया था और सीमा आयोग के फैसले में रेखांकित किया था, वह कई मामलों में त्रुटिपूर्ण थी। उन्होंने जो सीमा खींची, वह केवल नदियों, गाँवों और यहाँ तक कि बाजार स्थानों और घरों में चलने वाली एक सीमा रेखा थी। उनके पास दोनों देशों के बीच एक उचित सीमा तय करने के लिए कोई सही मानचित्र नहीं था (मोस्ले 1967) पुराने जिले के नक्शे उनके द्वारा उपयोग किए गए थे और वे किसी भी क्षेत्र सर्वेक्षण से बचते थे, यहाँ तक कि सीमा के सीमांकन में प्राकृतिक बाधाओं का पालन नहीं किया गया था (जोया चटर्जी 1999; जोया चटर्जी 1999; पुष्पिता दास 2008)। विभाजन और सीमा रेखा मुख्य रूप से सन्निहित मुस्लिम-बहुल और



गैर-मुस्लिम बहुल जिलों या ब्रिटिश बंगाल के पुलिस थानों जैसी उप-जिला प्रशासनिक इकाइयों के निर्धारण पर आधारित थी। कुछ अन्य प्रासंगिक कारक भी थे, जिन्हें पश्चिम बंगाल या पूर्वी पाकिस्तान को एक विशिष्ट जिला या उप-प्रशासनिक इकाई सौंपने के लिए ध्यान में रखा गया था। उदाहरण के लिए, जबकि रंगपुर जिले के अधिकांश हिस्से में मुस्लिम बहुमत था और इसलिए इसे पूर्वी पाकिस्तान को सौंपा गया था, रंगपुर में भूरंगमारी पुलिस थाना क्षेत्र, हालाँकि इसमें मुस्लिम बहुमत था, पश्चिम बंगाल को सौंपा गया था क्योंकि पश्चिम बंगाल को असम से जोड़ने वाली एकमात्र रेलवे लाइन उस क्षेत्र से होकर गुजरती थी (अमित रंजन 2018: 46)।

1.4 प्रवासन और शरणार्थी संकट

प्रवासन एक नए क्षेत्र या देश में लोगों की आवाजाही को संदर्भित करता है, आमतौर पर काम या बेहतर रहने की स्थिति खोजने के लिए। प्रवासन एक प्राचीन घटना रही है और यह स्वैच्छिक और मजबूर दोनों हो सकता है। लोग बेहतर अवसरों की तलाश में या तो स्वैच्छिक रूप से किसी अन्य देश में जा सकते हैं। आमतौर पर, प्रवासन बलपूर्वक होता है और इस विशाल पैमाने पर प्रवास के पीछे प्रमुख कारण अक्सर गरीबी, हिंसा और युद्ध से बचने के लिए होते हैं, या राजनीतिक नरसंहार और मानवाधिकारों के दुरुपयोग से बचने के लिए होते हैं। प्रवासी को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है जो अस्थायी रूप से या स्थायी रूप से एक ऐसे देश में रहता है जहाँ वह पैदा नहीं हुआ था और इस देश के साथ महत्वपूर्ण सामाजिक संबंध प्राप्त किया है (यूनेस्को 2017)।

UNESCO ने विभिन्न प्रकार के प्रवासन को परिभाषित किया है—

1. अस्थायी श्रमिक प्रवासी या अतिथि श्रमिक या विदेशी अनुबंध श्रमिक
2. अत्यधिक कुशल और व्यावसायिक प्रवासी
3. अनियमित प्रवासी या अनिर्दिष्ट या अवैध प्रवासी
4. मजबूर प्रवासी
5. परिवार पुनर्मिलन प्रवासियों
6. प्रवासियों की वापसी

पूर्वोक्त में प्रवासन और विद्रोह एक से अधिक कारकों का उत्पाद है। अस्थिर पूर्व-स्थितियों की गवाही देने के लिए महत्वपूर्ण सबूत हैं, जो वास्तविक सशस्त्र प्रकोप से पहले मौजूद थे। कुछ प्रचलित



अंतर्निहित कारक थे और उन्हें तनावग्रस्त वातावरण को प्रज्वलित करने के लिए केवल एक चिंगारी की आवश्यकता थी। अव्यक्त और तात्कालिक कारकों की परिणति के परिणामस्वरूप पूर्वोत्तर क्षेत्र में उग्रवाद की लगातार लहर आई। वर्तमान स्थिति के मूल कारण राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र के कई क्षेत्रों में पाए जाते हैं। कारणों का पता लगाने में, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि अतीत और वर्तमान एक साथ कितनी निकटता से जुड़े हुए हैं। गृह युद्ध, जातीय संघर्ष, आतंकवाद, सांप्रदायिक हिंसा और विद्रोह पिछले चार दशकों के दौरान दुनिया भर में विशेष रूप से अविकसित क्षेत्रों में आम हो गए हैं। ये अवांछनीय घटना दुनिया के विभिन्न हिस्सों में व्यापक रूप से प्रचलित हैं। इसके कारण मूल्यवान जीवन खो रहे हैं; कई निर्दोष नागरिक जो किसी भी तरह के आंदोलन में शामिल नहीं होते हैं, विद्रोह के मुख्य शिकार हैं। विद्रोह अनिवार्य रूप से मौजूदा प्राधिकरण को किसी न किसी रूप में उकसाता है। इसने मौजूदा अधिकारियों द्वारा किसी न किसी रूप में किए गए उग्रवाद विरोधी उपायों को अपरिहार्य बना दिया है। इसने विद्रोहियों और मौजूदा राजनीतिक प्राधिकरण दोनों के जीवन को चुनौती देने वाले एक व्यापक विद्रोह आंदोलन को जन्म दिया है।

पूर्वोत्तर क्षेत्र को असंख्य समस्याओं का सामना करता है और जिसमें सबसे महत्वपूर्ण समस्या में से एक अप्रवासन समस्या है। अप्रवासन शब्द को एक विदेशी देश में आने और निवास करने के रूप में परिभाषित किया गया है। वास्तविक व्यवहार में निवास भूमि के अलावा लाखों लोगों में अप्रवासन होता है, तो यह एक ओर स्वदेशी लोगों और दूसरी ओर अप्रवासियों के बीच आर्थिक, राजनीतिक सामाजिक और जनसांख्यिकीय के सभी पहलुओं में गंभीर असंतुलन पैदा करता है। पूर्वोत्तर भारत में असम और त्रिपुरा इस समस्या से पीड़ित रहे हैं। पूर्वोत्तर क्षेत्र अपनी विविध उत्पत्ति और विकास के कारण न केवल बाहरी बल्कि देश के विभिन्न हिस्सों के आंतरिक प्रवासियों से विशेष रूप से संवेदनशील है। उत्तर-पूर्व, लाओस, थाईलैंड और म्यांमार के गोल्डन त्रिकोण के करीब स्थित है, जो इसे ड्रग बैरन के डिजाइनों के लिए कमजोर बनाता है। क्षेत्र में सक्रिय उग्रवादी समूहों की बढ़ती संख्या के साथ, कानून प्रवर्तन एजेंसियों के लिए इससे निपटना एक जटिल समस्या है। विद्रोह अनिवार्य रूप से मौजूदा प्राधिकरण को किसी न किसी रूप में उकसाता है। मौजूदा प्राधिकारियों द्वारा किसी न किसी रूप में किए गए उग्रवाद-रोधी उपाय अपरिहार्य हैं। इससे एक व्यापक विद्रोह आंदोलन शुरू हो गया है जो विद्रोहियों और मौजूदा राजनीतिक प्राधिकरण दोनों के जीवन के लिए चुनौतीपूर्ण हो गया है।

समकालीन साहित्य में विद्रोह, क्रांति, गुरिल्ला युद्ध, और आतंकवाद और स्वतंत्रता संग्राम के



रूप में प्रासंगिक शब्दों की कई परिभाषाएँ हैं। कुछ लेखक इन शब्दों का गलत तरीके से और कई बार परस्पर उपयोग करते हैं। लुकास (1970) के अनुसार, विद्रोह एक संगठित आंदोलन है जिसका उद्देश्य विध्वंस और सशस्त्र संघर्ष के उपयोग के माध्यम से कानूनी रूप से गठित सरकार को उखाड़ फेंकना है। एंड्रयू एम स्कॉट (1987) के अनुसार, विद्रोह की एक और परिभाषा जो राजनीतिक पहलू पर अधिक केंद्रित है— “विद्रोह एक संगठित और मुख्य रूप से स्वदेशी समूह द्वारा लंबे, अनियमित युद्ध और संबद्ध राजनीतिक तकनीकों का उपयोग करके राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के प्रयासों को संदर्भित करता है। इसे एक प्रकार के सामाजिक आंदोलन के रूप में देखा जा सकता है जो टी.के. ओमन (1990) के अनुसार, यह शायद मुख्य तंत्र है जिसके माध्यम से वंचित श्रेणियाँ अपनी शक्ति का प्रदर्शन करती हैं। समाज अक्सर भेदभाव करते हैं और सरकारें अक्सर अपने नागरिकों को सेवाएँ देने में पक्षपाती और पूर्वाग्रह रखती हैं। एक सामाजिक समूह के प्रतिनिधि की संख्या हमेशा उस विशेष समूह को दिए गए उपचार के स्तर को निर्धारित करती है। कुछ समूह जो एक अलग सामाजिक जीवन को बनाए रखते हैं, वे अक्सर उपेक्षित और बुरा व्यवहार महसूस करते हैं। इस तरह के सौतेले व्यवहार का परिणाम विद्रोह पैदा करने वाले हिंसक सामाजिक आंदोलन का प्रकोप है।

भारत में बड़ी संख्या में पलायन होने के कुछ वैध कारण हैं और यह जनसांख्यिकीय संरचना, आर्थिक आजीविका और लोगों की आंतरिक सुरक्षा के लिए चुनौतियाँ पैदा कर रहा है। भारत की भू-रणनीतिक स्थिति, और अन्य पड़ोसी राज्यों की तुलना में इसकी अपेक्षाकृत बेहतर और धीरे-धीरे बढ़ती आर्थिक स्थिति, इसके उदार लोकतांत्रिक अधिकारों द्वारा समर्थित है जो ‘कानून के शासन’ ढाँचे पर आधारित हैं जो अन्य राज्यों में रहने वाले लोगों के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए एक बेहतर गारंटी है। बड़ी संख्या में आबादी जो अपने मूल देशों में उत्पीड़न से भाग रही है, सख्त राज्य नियामक मॉडल और कमजोर लोकतांत्रिक नींव के अधीन है, हमेशा भारत को एक बेहतर आर्थिक और राजनीतिक अवसर के रूप में देखती है।

अफगानिस्तान, श्रीलंका, म्यांमार, पाकिस्तान और बांग्लादेश के शरणार्थियों/अवैध आप्रवासियों को भारत में शरण मिली है। तथापि, यदि हम पूर्वोत्तर भारत के मामले में आकलन करते हैं तो इस प्रवास ने क्षेत्रों में स्थानीय आबादी के हितों पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाला है। अवैध प्रवासियों के बड़े पैमाने पर प्रवाह को देखते हुए, यह भारत के आंतरिक और राष्ट्रीय सुरक्षा हितों के लिए भी हानिकारक हो जाता है। इसके अलावा, नियामक ढाँचा किसी भी राष्ट्रीय शरणार्थी कानूनों से अनुपस्थित है, और इसने शरणार्थियों और आर्थिक प्रवासियों के बीच अंतर को धुंधला कर दिया है,



जिससे वास्तविक शरण चाहने वालों को किसी भी वास्तविक सहायता से इनकार कर दिया गया है। यह अब हमारी सामाजिक-अर्थव्यवस्था और सीमा सुरक्षा के लिए एक बड़ी समस्या है।

यदि हम पिछली चार जनगणनाओं में बांग्लादेश और भारत की जनसंख्या वृद्धि और जनसांख्यिकीय आँकड़ों का सामान्य विश्लेषण करते हैं तो यह काफी स्पष्ट हो जाता है कि बांग्लादेश से प्रवास की संख्या 15 मिलियन से अधिक है। उनमें से अधिकांश बांग्लादेश के साथ सीमा से लगे राज्यों में बस गए हैं, और कुछ बाद में भारत के अन्य हिस्सों में चले गए, जिसमें इसके दूर-दराज के क्षेत्र भी शामिल हैं, जिससे बड़ी चुनौतियाँ पैदा हुईं। भारत के सीमावर्ती राज्यों में बड़ी संख्या में अवैध बांग्लादेशी आप्रवासियों की यह भारी आमद हमारे लिए एक बड़ी चुनौती साबित हुई है। इससे हमारे मानव संसाधन, अर्थव्यवस्था और राष्ट्रीय सुरक्षा पर गंभीर दबाव पड़ा है। इसने भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में जनसांख्यिकीय पैटर्न को काफी हद तक बदल दिया है, जिससे प्रमुख सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक उथल-पुथल हुई है। प्रवासियों की बढ़ती आबादी और राज्य की राजनीति में उनके बढ़ते चुनावी महत्त्व को देखते हुए राज्यों की सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रिया में स्वदेशी लोग अत्यधिक बहिष्कृत और हाशिए पर महसूस करते हैं। इससे उनके जीवन के तरीके पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और दोनों पक्षों के बीच तनाव बढ़ गया है। एक और देश, जो भारत के लिए शरणार्थी संकट का स्रोत है, वह म्यांमार है। रखाइन प्रांत में मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय के रोहिंग्याओं को लंबे समय से म्यांमार में दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता रहा है। उन्हें बांग्लादेश का अवैध प्रवासी भी माना जाता है और इसलिए उन्हें नागरिकता से वंचित कर दिया गया है। इस मुद्दे ने कुछ चुनावी उद्देश्यों और छोटे लाभों के साथ भारत की घरेलू नीति में अपनी स्थिति प्राप्त की।

1.5 एकट ईस्ट पॉलिसी, भारत और पड़ोस

कई लोगों के सुझावों के विपरीत, दक्षिण एशिया और व्यापक हिंद महासागर क्षेत्र में भारत की प्रबलता का स्वर्ण युग कभी नहीं था।¹ बिम्सटेक (BIMSTEC) में भारत की रुचि ने संगठन को नई उम्मीदें दी हैं, और यह हमारे समय की वास्तविकता को दर्शाता है। भारत बंगाल की खाड़ी क्षेत्र में क्षेत्रीय कनेक्टिविटी, तटीय जहाजरानी, अंतरिक्ष, ऊर्जा, परिवहन और पर्यटन को बढ़ावा देने के संदर्भ

¹ ओआरएफ टिप्पणियाँ, 30 अगस्त 2018। URL <https://www.orfonline.org/research/43687-to-strengthen-bimstec-is-to-re-imagine-indias-strategic-geography-in-the-bay-of-bengal/> पर उपलब्ध



में सहयोग के नए स्तरों को स्थापित करने के लिए अपनी एकट ईस्ट नीति के उद्देश्यों के साथ संरक्षण में बिम्सटेक को एक 'प्रमुख कड़ी' के रूप में देखता है।

इस संगठन का 'भौगोलिक लाभ' दक्षिण एशिया और दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के बीच विवेकपूर्ण संबंध बनाता है। और यह अपने उत्तर-पूर्वी क्षेत्र और दक्षिण-पूर्वी अर्थव्यवस्थाओं के बीच अधिक क्षेत्रीय आर्थिक जुड़ाव और साझेदारी बनाने के भारत के प्रयासों के साथ भी प्रत्यक्ष अनुनाद पाता है। प्रत्यक्ष संपर्क, उग्रवाद विरोधी सहयोग और ऊर्जा संसाधन क्षेत्रों तक संभावित पहुँच की गुंजाइश ने पिछले वर्षों में इस मंच को सक्रिय बनाने के लिए भारत की रुचि पैदा की है। बिम्सटेक और बीबीआईएन के माध्यम से क्षेत्रीय और उप-क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने की तात्कालिकता बेल्ट रोड इनिशिएटिव (बीआरआई) के तहत एशिया में चीन के शक्तिशाली भू-आर्थिक और भू-राजनीतिक हस्तक्षेपों से उत्पन्न सम्मोहक रणनीतिक चुनौतियों के संदर्भ में भी है।

बिम्सटेक में भारत की 'नई दिलचस्पी' को भारत की विदेश नीति के प्रयासों में भी समानता मिलती है, ताकि वह अपनी 'नेबरहुड फर्स्ट' और 'एकट ईस्ट पॉलिसी' स्थापित कर सके। यह गोवा में अक्टूबर 2016 में आयोजित "ब्रिक्स-बिम्सटेक आउटरीच शिखर सम्मेलन" से भी संबंधित है, जहाँ सदस्य देशों के नेताओं ने सामूहिक रूप से बिम्सटेक को मजबूत और प्रभावी बनाने के लिए काम करने का वचन दिया था। गोवा में बिम्सटेक नेताओं की बैठक में, उनके संयुक्त बयान में इस बात पर जोर दिया गया था कि भौगोलिक निरंतरता, प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक और मानव संसाधन, समृद्ध ऐतिहासिक संबंध और साझा सांस्कृतिक विरासत भी बिम्सटेक को हमारे क्षेत्र में शांति, स्थिरता और समृद्धि को बढ़ावा देने के लिए आदर्श मंच प्रदान करेगी।²

इस संगठन की 20 वीं वर्षगाँठ पर, प्रधानमंत्री (पीएम) नरेंद्र मोदी ने बिम्सटेक को भारत के पूर्व की ओर जुड़ाव के लिए 'प्राकृतिक मंच' के रूप में वर्णित किया। मार्च 2017 में भारत ने नई दिल्ली में बिम्सटेक राष्ट्रीय सुरक्षा प्रमुखों की बैठक का आयोजन किया। इस संगठन की 20वीं वर्षगाँठ पर, प्रधानमंत्री (पीएम) नरेंद्र मोदी ने बिम्सटेक को भारत के पूर्व की ओर जुड़ाव के लिए 'प्राकृतिक मंच' के रूप में वर्णित किया। मार्च 2017 में भारत ने नई दिल्ली में बिम्सटेक राष्ट्रीय

² बिम्सटेक लीडर्स रिट्रीट 2016 आउटकम डॉक्यूमेंट, 17 अक्टूबर, 2016, यूआरएल पर उपलब्ध है—
http://www.mea.gov.in/bilateraldocuments.htm?dtl/27501/BIMSTEC_Leaders_Retreat_2016_Outcome_Document

BBC Monitoring, "Can Modi Reconnect India With Central Asia?" *BBC*, 2015,



सुरक्षा प्रमुखों की बैठक का आयोजन किया। इसने भारत को सभी के लिए वृद्धि और विकास के लिए सामूहिक दृष्टि के तहत क्षेत्र के लिए ठोस आर्थिक हितों को बढ़ावा देने के आधार पर 'नेतृत्व की भूमिका' निभाने की अनुमति दी है। सार्क के विपरीत, बिम्सटेक देशों को प्रभावित करने वाले सामान्य सुरक्षा मामलों को संबोधित करने पर एक 'व्यापक सहमति' है। और इसे आतंकवाद को परिभाषित करने में सदस्य राज्यों के बीच मतभेद का सामना नहीं करना पड़ता है।

उप क्षेत्र में कनेक्टिविटी के मुद्दों पर, भारत वित्तपोषण और परियोजना निष्पादन के मामले में अधिक प्राथमिकता देता है। पूरे उप क्षेत्र में प्रमुख कनेक्टिविटी परियोजनाओं के लिए, भारत बिम्सटेक में 'अग्रणी देश' है। विकास के विभिन्न चरणों में कई द्विपक्षीय और त्रिपक्षीय परियोजनाएँ चल रही हैं, और विशेष रूप से सड़क और रेलवे कनेक्टिविटी से संबंधित भारत, बांग्लादेश, नेपाल और भूटान में लागू की जा रही हैं। विभिन्न साझेदारी समझौतों के तहत भारतीय 'क्रेडिट लाइनें' इन परियोजनाओं के लिए सबसे अधिक वित्त पोषण कर रही हैं।

नेपाल और भूटान के संदर्भ में दोनों देश लैंडलॉक काउंटी बने हुए हैं, और बिम्सटेक कनेक्टिविटी बढ़ाने की संभावना रखता है। नेपाल भी नई व्यवस्था के तहत भारत और अन्य क्षेत्रीय देशों के साथ संबंध बनाने का इच्छुक है। श्रीलंका के लिए बिम्सटेक तेजी से बढ़ती दक्षिण पूर्व एशियाई अर्थव्यवस्थाओं के साथ जुड़ने का एक अवसर है। उप क्षेत्र में अपनी भौगोलिक स्थिति को देखते हुए, बांग्लादेश बिम्सटेक के लिए विशेष रूप से व्यापार और निवेश, ऊर्जा गलियारों और नीली अर्थव्यवस्था और जलवायु परिवर्तन में सहयोग के लिए अग्रणी देश बना हुआ है।

अन्य सदस्य देशों के लिए, जैसे म्यांमार के लिए 'रणनीतिक स्थिति' को देखते हुए उच्च हैं, और बिम्सटेक आसियान के लिए संभावित प्रवेश द्वार कैसे हो सकता है। यह क्षेत्रीय कनेक्टिविटी नेटवर्क में प्रमुख हितधारकों के रूप में भारत और थाईलैंड के बीच व्यापक आर्थिक सहयोग को बढ़ाने की भी अनुमति देता है। भारत-म्यांमार-थाईलैंड (आईएमटी) त्रिपक्षीय राजमार्ग आसियान और भारत के बीच व्यापार और वाणिज्य का दावा करने की उम्मीद है, और बिम्सटेक उप-क्षेत्रीय समूह के रूप में भारत की 'लुक ईस्ट' और थाईलैंड की 'लुक वेस्ट' नीति के साथ सहमति बनाता है। गैर-लोकतांत्रिक चरित्र वाले क्षेत्र के कुछ राज्यों के लिए संगठन उप-क्षेत्रीय राजनीति और अर्थव्यवस्था में आवश्यक हितधारक होने के लिए एक प्रासंगिक मंच प्रदान करता है।



1.6 सारांश

एक उत्तर औपनिवेशिक राज्य के रूप में, भारत को अपनी परिधि के भीतर कुछ चुनौतियों और मुद्दों का सामना करना पड़ता है। इन चुनौतियों की अपनी उत्पत्ति ऐतिहासिक से राजनीतिक और आर्थिक से प्रमुख शक्ति संबंधों तक विभिन्न कारकों की सीमा में है। एशिया में शक्ति संतुलन को भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी, जबकि नव स्वतंत्र आधुनिक राष्ट्र राज्य की प्रकृति और नेतृत्व द्वारा इसकी राजनीति और विकल्पों की भी इन मुद्दों और चुनौतियों को आकार देने में भूमिका और महत्व था। चुनौती के रूप में भारत के सामने जो प्रमुख सीमा विवाद था, वह चीन के साथ था, जिसे बाद में भारतीय नेतृत्व ने भारत द्वारा परमाणु परीक्षणों के संचालन के दौरान 'संभावित खतरे' के रूप में पहचाना था। इस विवाद की उत्पत्ति माओवादी चीन द्वारा 'पंचशील' के तहत भारत और चीन के बीच हस्ताक्षरित शांति और समझौते की शर्तों का न केवल पूरी तरह से उल्लंघन करने की इच्छा में हुई थी, बल्कि भारतीय क्षेत्रीय संप्रभुता पर आक्रमण का स्पष्ट प्रयास था। चीन ने 1962 में सीमा विवाद के नाम पर जो विलय किया था, वह आधुनिक एशियाई इतिहास के पन्नों में कभी उत्पन्न नहीं हुआ, बल्कि पारस्परिक चिंताओं और हितों के लिए पूर्ण अलगाव दिखाने का एक चीनी प्रयास था।

पाकिस्तान के मामले में, विवाद कुछ और नहीं, बल्कि पाकिस्तान के नेतृत्व की काल्पनिक व्याख्या है, कुछ ऐसा जो वे अपना अधिकार होने का दावा करते हैं, जो निराधार आधारों और इतिहास की झूठी तथ्यात्मक समझ पर आधारित है। वे विभाजन की कठोर वास्तविकताओं को स्वीकार करने और घरेलू समर्थन के लिए अपने राजनीतिक लाभ की तलाश में विफल रहे, और वे विभिन्न साधनों के माध्यम से भारत में सीमा पार आतंकवाद को बढ़ावा देने में लगातार शामिल रहे हैं। भारतीय सेना और खुफिया निकायों ने साहसपूर्वक चुनौतियों का सामना किया है और पाकिस्तानी आतंकवादियों को पीछे धकेल दिया है। सीमावर्ती क्षेत्रों में अवैध प्रवास के विषय पर और जनसांख्यिकी और अर्थव्यवस्था पर उनके प्रभाव को रोकने के लिए, राज्य के कानूनों और पुलिसिंग का नियामक ढाँचा पिछले दशकों में बहुत सख्त रहा है। संक्षेप में कहें तो अतीत के विपरीत समकालीन भारतीय नेतृत्व और राजनीतिक व्यवस्था आज वर्तमान समय में इन चुनौतियों का सामना करने के लिए बहुत बेहतर स्थिति में हैं। जबकि कूटनीतिक रूप से भारत पड़ोसी राज्यों के साथ सीमा मुद्दों को हल करने के लिए दृढ़ संकल्पित है। सीमा पार आतंकवाद, अवैध प्रवास और



शरणार्थी संकट के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी प्रकार की चुनौतियों का सामना करने के लिए सेना, स्थानीय-पुलिस और हमारे फ्रंटलाइन-फोर्स अच्छी तरह से सुसज्जित, प्रशिक्षित और लॉजिस्टिक रूप से समर्थित हैं। हालाँकि हम सैद्धांतिक रूप से मानवीय सहायता प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध हैं, लेकिन यह हमारे हितों और संसाधनों पर किसी भी प्रकार का समझौता है। वर्षों से, भारतीय राज्य हर स्तर पर बाहरी या आंतरिक स्तर से उत्पन्न होने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए एक मजबूत शक्ति के रूप में विकसित हुआ है।

संक्षेप में, इसके सामाजिक-आर्थिक आकार और भू-राजनीतिक स्थिति को देखते हुए, भारतीय कूटनीति और विश्व राजनीति और सुरक्षा मुद्दों में इसकी राय के लिए बड़ी भूमिका का संदेह बहुत कम है। नई विदेश नीति की गतिशीलता इसका एक और प्रतिबिंब है, जिसमें कई भारतीय नेता अन्य राज्यों के साथ अधिक-से-अधिक गहन जुड़ाव के लिए विदेशों की 'उच्च स्तरीय यात्राएँ' कर रहे हैं।

1.7 निष्कर्ष

भारत का भौगोलिक आकार, इसकी बढ़ती आर्थिक स्थिति, वैश्विक प्रभाव का विस्तार और बढ़ती सैन्य ताकत इसे एक अग्रणी राज्य बनने की उच्च क्षमता वाला देश बनाती है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में, इसने अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त किया कि 'भारत निकट भविष्य में एक विश्व नेता बन जाएगा' (डेक्कन क्रॉनिकल 2013)। चीन के साथ, भारत अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में एक महत्वपूर्ण भागीदार होने की कुछ विश्वसनीय विशेषताओं का प्रदर्शन कर रहा है। भारत की विदेश नीति और राजनयिक संबंधों का यह कदम विशेष रूप से एशिया-प्रशांत के भू-राजनीतिक परिदृश्य के लिए महत्वपूर्ण होगा। जैसा कि वैश्विक शक्ति केंद्र ने पूर्व की ओर एक बदलाव लिया है, एशिया प्रशांत सत्ता की राजनीति के प्रमुख रंगमंच में से एक के रूप में उभरा है।

पहली बात, भारतीय अर्थव्यवस्था इतनी बड़ी है कि आर्थिक साझेदारी और सहयोग के किसी भी पैमाने पर इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। शीत युद्ध के बाद के दौर में भारत ने अपने बढ़ते सेवा उद्योग, मजबूत आईटी साख, विशाल उपभोक्ता बाजार और बढ़ते निजी निवेश का 'तुलनात्मक लाभ' उठाते हुए योजना से उदार आर्थिक मॉडल की ओर बदलाव को काफी रेखांकित किया है। हाल के वैश्विक रेटिंग आकलन ने आर्थिक विकास, अनुमानों और स्थिरता के मामले में भारत को काफी अच्छी और सराहनीय स्थिति में रखा है। दूसरा, सेना भेजने के मामले में भारत अब दुनिया के



सातवें सबसे बड़े राज्य के रूप में उभरा है। कुछ आकलन इसे दुनिया में 2020 तक चौथे स्थान पर होने का अनुमान लगा रहे हैं। इसमें चीन को छोड़कर एशिया के किसी भी देश की तुलना में अधिक सैन्य कर्मी हैं, और इसका रक्षा बजट बढ़कर \$46.8 बिलियन (इकोनॉमिस्ट 2013) हो गया है। अंत में, भारत के भू-रणनीतिक स्थान ने इसके वैश्विक महत्व को भी बढ़ा दिया है। दक्षिण एशिया में भारत की केंद्रीय स्थिति ने इसे 'प्राकृतिक सुपर-पावर' बना दिया है।

1.8 शब्दावली

सीमा, सामूहिक सुरक्षा, मानवाधिकार, विद्रोह, प्रवासन, विकास, राज्य, आतंकवाद, खुफिया, सुरक्षा

1.9 अभ्यास प्रश्न

1. आप भारत और चीन के बीच सीमा विवाद को कैसे समझते हैं?
2. यूनेस्को द्वारा मान्यता प्राप्त विभिन्न प्रकार के प्रवासन क्या हैं?
3. भारतीय पड़ोस में सीमा मुद्दों ने व्यापक दक्षिण एशियाई एकजुटता और सहयोग को कितना प्रभावित किया है?
4. पाकिस्तान की ओर से सीमा पार आतंकवाद पर भारत की प्रतिक्रिया क्या है?
5. भारतीय राज्य के सामने प्रमुख आंतरिक सुरक्षा चुनौतियों की पहचान करें?
6. क्या आप इस बात से सहमत हैं कि दो राज्यों के बीच सीमा विवाद जैसे ऐतिहासिक मुद्दों से बेहतर आर्थिक संबंध दूर हो सकते हैं?

1.10 संदर्भ सूची

- Modi Shaping the Global order in Flux, Wisdom Tree Publications, 2023.
- Self Deception, India's China Policies, Harper Collins, 2013.
- Mansfield, E. (2014). Rising powers in the global economy: Issues and questions. *International Studies Review*, 16, 437–466.
- Lin Yueqin. (2010). The rise of emerging powers and the BRICs Chase to catch up. *China Economist*, 5(2).



- Armijo, L. E. (2007). The BRICS (Brazil, Russia, India and China) countries as analytical category: Mirage or insight? *Asian Perspective*, 31(4), 7–42.
- The Economist (2005). Argentina, Brazil and the IMF. Kirchner and Lula: Different ways to give the Fund the kiss off. *The Economist*, 20th Dec.
- Deccan Chronicle. (2013). *Traditional values can lead India to superpower: Modi*. Hyderabad: Deccan Chronicle.
- Dhruva Jaishankar, “Survey of India’s Strategic Community,” e Brookings Institution, 1 March 2019,
- “Prime Minister Shri Narendra Modi’s Visit to Bhutan,” Narendra Modi, 19 June 2014
- Ashlyn Anderson and Alyssa Ayres, “Economics of influence: China and India in South Asia,” Council on Foreign Relations, 3 August 2015,
- For a detailed articulation of this argument, see Harsh V. Pant, *Indian Foreign Policy: e Modi Era* (New Delhi: Har-Anand Publishers, 2018)

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi



इकाई-IV : समकालीन बहुधुवीय विश्व में भारत

पाठ-1 : व्यापार, पर्यावरण और सुरक्षा रणनीति के संबंध में भारत की वार्तालाप की शैली

डॉ. दुर्योधन नाहाक

अनुवादक : राखी

संरचना

- 1.1 उद्देश्य
- 1.2 प्रस्तावना
- 1.3 भारत का वैश्विक व्यापार
- 1.4 भारत के व्यापार के रास्ते में बाधाएँ
- 1.5 पर्यावरण के क्षेत्र में वार्तालाप
- 1.6 सुरक्षा रणनीति
- 1.7 निष्कर्ष
- 1.8 अभ्यास प्रश्न
- 1.9 संदर्भ सूची

1.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी निम्नलिखित को करने में सक्षम हो पायेंगे-

- उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की शुरुआत के बाद से भारत की वैश्विक व्यापार पटल में स्थिति की चर्चा कर पायेंगे ।
- मौर्य, चोल, गुप्त, पंड्या जैसे प्राचीन भारतीय साम्राज्यों के बारे में जागरूक हो सकेंगे, जो इंडोनेशिया, मलेशिया, म्यांमार जैसे दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों और नेपाल, अफगानिस्तान और सीलोन जैसे पड़ोसी राज्यों के साथ समुद्र के पार वाणिज्यिक गतिविधियों को अंजाम देते थे।



1.2 प्रस्तावना

इस तथ्य के बावजूद कि संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता की रक्षा करना एक राष्ट्र के प्राथमिक हित हैं, व्यापार, पर्यावरण और सुरक्षा के संबंध में विदेश नीति की रणनीति ज्वलंत मुद्दे हैं, जिन्हें वर्तमान परिस्थितियों में अनिर्धारित नहीं किया जा सकता है। भारत अपनी स्वतंत्रता के बाद से, दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में जीवित रहा है। लगभग 1.4 बिलियन की आबादी वाला भारत बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है, जो धीरे-धीरे निवेश और बड़े पैमाने पर उद्योगों और प्रौद्योगिकी केंद्रों के लिए एक आकर्षक गंतव्य के केंद्र के रूप में उभर रहा है। 1991 में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की शुरुआत के बाद से भारत के वैश्विक व्यापार में कई गुना वृद्धि हुई है। बाजार सुधारों ने भविष्य में भारत को निवेश गंतव्य के रूप में चुनने के लिए औद्योगिक व्यवसायी के आत्मविश्वास को बढ़ाया। यह उल्लेखनीय है कि भारत जलवायु परिवर्तन और वैश्विक गर्मी के क्षेत्र में बातचीत करने में एक अग्रदूत देश के रूप में उभरा है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत के बिना एक सुरक्षित दुनिया के बारे में सोचना असंभव है। पारंपरिक और मानवीय सुरक्षा दोनों के क्षेत्र में भारत की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह शांति की वकालत करता है और सार्वभौमिक निशस्त्रीकरण एकमात्र साधन है, जो मानवता की बेहतरी के लिए शांति की जिम्मेदारी दे सकता है।

इस अध्याय को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया गया है। पहला भाग भारत के वैश्विक व्यापार, समस्याओं और संभावनाओं का विवरण करेगा। दूसरा भाग पर्यावरण और भारत द्वारा अब तक उठाए गए कदमों और विभिन्न सीओपी बैठकों में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वह क्या कार्रवाई करने जा रहा है, का विश्लेषण करेगा। और तीसरा भाग भारत की सुरक्षा चुनौतियों और रणनीति का विश्लेषण करेगा।

1.3 भारत का वैश्विक व्यापार

उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण के आगमन के साथ, इसे 1990 के दशक की शुरुआत में कई बाधाओं को हटाना पड़ा, बाद में, इसने अन्य देशों के साथ द्विपक्षीय और बहुपक्षीय व्यापार के सुचारु संचालन के लिए मार्ग प्रशस्त किया। चूंकि व्यापार वैश्विक परिदृश्य में किसी देश की शक्ति को मापने का एक प्रमुख मानदंड है, इसलिए सरकार के लिए अपने बाजार को उदार बनाना, अंतर्राष्ट्रीय



समुदाय को भारत में निवेश करने के लिए आमंत्रित करने के लिए प्रमुख बाधाओं को दूर करना मजबूरी थी। ऐतिहासिक रूप से, मौर्य, चोल, गुप्त, पांड्य जैसे प्राचीन भारतीय साम्राज्य इंडोनेशिया, मलेशिया, म्यांमार जैसे दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों और नेपाल, अफगानिस्तान और सीलोन जैसे पड़ोसी राज्यों के साथ समुद्र के पार वाणिज्यिक गतिविधियों को ले जाते थे।

जोसेफ एस नाई, बाल्डुइन आदि जैसे नवउदारवादी विद्वानों ने देखा कि पहले से कहीं अधिक वर्तमान समय की बहस में राजनीतिक रूप से कम प्रमुख प्रश्न उच्च राजनीतिक और सुरक्षा मुद्दों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण हैं। पाकिस्तान और चीन के साथ भारत के संबंधों में अस्थिर स्थिति को देखते हुए भारत ज्यादातर स्वतंत्रता के बाद से द्विपक्षीय व्यापार पर निर्भर करता है। इसने नेपाल, श्रीलंका, भूटान और बांग्लादेश जैसे कुछ पड़ोसी देशों के साथ व्यक्तिगत व्यापार संबंध स्थापित किया है। 1990 के दशक की शुरुआत में व्यापार क्षेत्र में नए अवसरों की शुरुआत के साथ, भारत ने दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों की ओर देखने के साथ नए व्यापार के अवसरों का पता लगाने के लिए ईमानदारी से प्रयास किए हैं। प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने 1992 में "लुक-ईस्ट" नीति की घोषणा की थी। धीरे-धीरे भारत 1994 में आसियान के साथ एक क्षेत्रीय संवाद भागीदार और 1996 में पूर्ण संवाद भागीदार बन गया। इसके बाद, भारत-एशियाई सहयोग दो दशक पहले 2002 में शुरू हुआ था। आसियान के साथ भारत का व्यापार केवल 10.5 प्रतिशत है, जो चीन की तुलना में बहुत कम है। भारत-आसियान मुक्त व्यापार क्षेत्र 2009 में अस्तित्व में आया था, लेकिन अभी तक पर्याप्त प्रगति हासिल नहीं की गई है। भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने आसियान देशों से आग्रह किया कि वे 2021 में वियतनाम के प्रधानमंत्री के साथ भारत-आसियान प्रस्तुतियों की सह-अध्यक्षता करते हुए फार्मास्यूटिकल्स, ऑप्टिकल और मेडिसिन जैसे कुछ लंबित मुद्दों पर त्वरित कार्रवाई करें। भारत और आसियान के विपरीत, भारत और यूरोपीय संघ के बीच अब तक कोई मुक्त व्यापार क्षेत्र नहीं है। यूरोपीय संघ चीनी गतिविधियों और एशिया में इसकी बुरी अभिकल्पना "स्प्रिंग ऑफ पल्स" के बारे में जानता है। वह भारत के साथ आर्थिक संबंध विकसित करके चीन को रोकना चाहता है। एक और उल्लेखनीय विकास यह है कि पिछले दो वर्षों के दौरान भारत-अमेरिका व्यापार ने 2019 और 2020 में भारत-चीन व्यापार को पीछे छोड़ दिया है। जबकि भारत-चीन व्यापार 2021 के अंत में केवल 81 बिलियन डॉलर है, कई चीनी एपीएस और उत्पादों के उपयोग पर भारत द्वारा लगाए गए कुछ कड़े उपायों के बाद, भारत-अमेरिका व्यापार 2018-19 में 87 बिलियन डॉलर की तुलना में 88 बिलियन डॉलर था।



यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि 2008 में वैश्विक वित्तीय संकट के कारण विश्व अर्थव्यवस्था धीमी हो गई है। इससे पहले विश्व अर्थव्यवस्था आंशिक रूप से पूर्वी-एशियाई आर्थिक संकट से प्रभावित थी। आर्थिक सुधार, कुछ क्षेत्रों में निवेश को खोलने, राजनीतिक स्थिरता और भारत में बढ़ते विदेशी मुद्रा भंडार जैसे कदमों ने 21वीं सदी की शुरुआत में घरेलू बाजार को बड़े पैमाने पर बढ़ावा दिया। यद्यपि वित्तीय गिरावट के प्रभाव में अमेरिकी और यूरोपीय बाजार नीचे चले गए, भारतीय सकल घरेलू उत्पाद कुछ तिमाहियों में 10 प्रतिशत तक भी पहुँच गया और कभी भी 7 प्रतिशत से नीचे नहीं गया। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में तेल की बढ़ती कीमत और खराब आर्थिक बुनियादी बातों ने 2012-13 में भारतीय व्यापार को प्रभावित किया। 2014 में देश में व्यवस्था में बदलाव, घरेलू माँग में वृद्धि जैसे बाद के घटनाक्रमों ने 2016 की दूसरी छमाही में आर्थिक गतिविधियों को फिर से शुरू करने में बड़े पैमाने पर मदद की। जबकि विकासशील देशों ने मिश्रित प्रदर्शन हासिल किया, अमेरिका, ब्रिटेन और यूरोप जैसी प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं ने आर्थिक मोर्चे पर अच्छा प्रदर्शन करना शुरू कर दिया। दूसरी ओर, चीन ने विनिर्माण और सेवा क्षेत्रों को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 2017 सितंबर की प्रेस विज्ञप्ति में, विश्व व्यापार संगठन ने अपने संशोधित अनुमान में कहा कि वैश्विक व्यापार जो 2017 में 2.4 प्रतिशत की वृद्धि होनी चाहिए थी, 2017 में 3.6 प्रतिशत की वृद्धि की उम्मीद है। हालाँकि भारत के निर्यात में हल्का उछाल देखा गया, लेकिन एशिया में अन्य विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में इसका माल निर्यात संतोषजनक नहीं है। साथ ही साथ, अब विकसित देश एशिया की विकासशील अर्थव्यवस्थाओं पर कड़ी निगरानी रख रहे हैं क्योंकि उन्हें बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं और विनिर्माण क्षेत्रों में भारी निवेश के लिए बड़े घरेलू बाजारों की आवश्यकता है। हाल के वर्षों में, भारत का व्यापार गतिशील निजी क्षेत्र, विशेष रूप से सूचना प्रौद्योगिकी और सेवा क्षेत्रों द्वारा संचालित किया गया है क्योंकि वे भारतीय अर्थव्यवस्था को अत्यधिक बढ़ावा दे रहे हैं। पिछले 25 वर्षों में भारत के निर्यात में 17 प्रतिशत और आयात में 19 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वास्तव में, बाजार उदारीकरण की शुरुआत के बाद से भारत के वैश्विक व्यापार में कई गुना वृद्धि हुई है। वास्तविक संख्या में, भारत का निर्यात 1990 के दशक की शुरुआत में 0.6 प्रतिशत से बढ़कर 2016 में 1.7 प्रतिशत हो गया है। इसी तरह, उक्त अवधि में भारत का आयात 0.6 प्रतिशत से बढ़कर 2.4 प्रतिशत हो गया है। इस उच्च विकास ने भारत में निरंतर मजबूत आर्थिक विकास में मदद की। 2015 में, भारत ने 2015-20 से विदेश व्यापार नीति की घोषणा की, जिसमें दो व्यापक उद्देश्यों का उल्लेख किया गया था। सबसे पहले, भारत ने अपनी



हिस्सेदारी को 450 बिलियन से 900 बिलियन डॉलर तक दोगुना करने का लक्ष्य रखा। दूसरे, यह उम्मीद की जाती है कि भारत निर्यात और आयात की टोकरी में अपनी हिस्सेदारी 2 प्रतिशत से बढ़ाकर 3.5 प्रतिशत कर देगा। यहाँ यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि पिछले दो वर्षों से कोविड-19 महामारी के बीच पूरी वैश्विक अर्थव्यवस्था और व्यापार गंभीर रूप से प्रभावित हुए हैं। भारत की जीडीपी 2020-21 के वित्तीय वर्षों में स्वाभाविक रूप से नकारात्मक थी। इसके मद्देनजर विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने अनुमान लगाया है कि वर्ष 2022-23 के वित्तीय वर्षों में भारत की अर्थव्यवस्था में सात प्रतिशत से अधिक की वृद्धि होगी। भारत सरकार द्वारा “मेक इन इंडिया इनिशिएटिव” एक महत्वाकांक्षी नीति है, जो भारतीय व्यापार समुदाय के बीच प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करेगी जो लंबे समय तक देश में बड़ी संख्या में विनिर्माण वस्तुओं के उत्पादन में मदद करती है। इससे आने वाले पेशेवर युवाओं के लिए रोजगार के अवसर में और वृद्धि होगी।

1.4 भारत के व्यापार के रास्ते में बाधाएँ

जनवरी 1995 में अस्तित्व में आने के बाद से भारत ने विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारत 1948 से अपने पूर्ववर्ती संगठन जनरल एग्रीमेंट ऑन टैरिफ एंड ट्रेड (जीएटीटी) के संस्थापक सदस्यों में से एक के रूप में बना रहा। इस बीच, अब डब्ल्यूटीओ विवाद निपटान निकाय के समक्ष कई शिकायतें लंबित हैं। उनमें से प्रमुख कृषि सब्सिडी, पर्यावरण, बाजार पहुँच, और निवेश से संबंधित मुद्दे और खाद्य सुरक्षा मानक हैं। भारत मुख्य रूप से एक कृषि प्रधान देश होने के नाते, जहाँ लगभग 30 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे रहते हैं। यह सरकार की जिम्मेदारी है कि वह उनके जीवन स्तर को बेहतर बनाए। यहाँ तक कि सरकार को भी कृषि जिनसे के न्यूनतम समर्थन मूल्य में वृद्धि करने के लिए किसानों के बीच असंतोष की गहरी भावना का सामना करना पड़ रहा है। यह 1950 के दशक की शुरुआत के बाद से देश में राजनीतिक दलों के लिए एक चुनावी मुद्दा बना हुआ है।

दक्षिण एशियाई देशों के बीच असहयोग के कारण अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में भारत का व्यापार और बाधित हो रहा है। दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) दिसंबर 1985 में अस्तित्व में आया। आर्थिक क्षेत्र में असहयोग के कारण, पाकिस्तान द्वारा व्यक्तिगत प्रतिद्वंद्विता और जुझारू व्यवहार, काफी हद तक दक्षिण एशियाई पड़ोसियों में व्यापार संबंधों को प्रभावित करता है। यही



कारण है कि, सैंतीस शिखर सम्मेलनों के बजाय केवल सदस्यों ने सार्क की उत्पत्ति के बाद से 18 बार मुलाकात की है। सार्क के उद्देश्यों को कहीं-न-कहीं याद किया गया है। दूसरी ओर, दक्षिण एशिया क्षेत्र के देश अपने आर्थिक हितों की रक्षा के लिए दुनिया की प्रमुख शक्तियों के साथ सहयोग करने की कोशिश कर रहे हैं। चीन दक्षिण एशिया के क्षेत्र में भारत को रोकने के उद्देश्य से दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया में अपने आधार का विस्तार कर रहा है। इसके विपरीत, भारत विभिन्न क्षेत्रीय और उप-क्षेत्रीय आर्थिक समूहों और व्यापार व्यवस्थाओं सक्रिय रूप से भाग ले रहा है। संगठन जैसे बंगाल की खाड़ी में बहु-सांप्रदायिक आर्थिक और तकनीकी पहल के लिए (बेम्सटेक), दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों के संघ (आसियान), यूरोपीय संघ, जी-20, जी-7 आदि। भारत ने क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक सहयोग (आरसीईपी) से खुद को दूर रखा है जिसमें चीन एक महत्वपूर्ण भागीदार है। यह उल्लेख करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि भारत की “लुक-ईस्ट” नीति के हिस्से के रूप में, जिसे 1992 में नरसिम्हा राव सरकार द्वारा शुरू किया गया था, उनके उत्तराधिकारियों द्वारा आगे बढ़ाया गया था। पहला भारत-आसियान शिखर सम्मेलन वर्ष 2002 में आयोजित किया गया था। सार्क से ज्यादा, भारत आसियान और यूरोपीय संघ, जी-77, जी-20 के साथ संबंधों में सुधार कर रहा है। वास्तव में, भारत के आर्थिक सुधारों को विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे अंतर्राष्ट्रीय प्रहरी द्वारा अच्छी तरह से समर्थन दिया जा रहा है। इसके अलावा द्विपक्षीय स्तर पर इसने विभिन्न देशों के साथ मुक्त व्यापार क्षेत्र पर हस्ताक्षर किए हैं। चूँकि भारत एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभरा है, इसलिए यह विभिन्न अन्य क्षेत्रों में अपनी गतिविधियों को तेज कर रहा है। क्षेत्रीय संगठन सार्क की पिछले सात वर्षों से बैठक नहीं हुई है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि समूहों और उप-क्षेत्रीय समूहों का गठन कागज पर किया जाता है; वे वास्तविकता में काम नहीं कर रहे हैं। बल्कि भारत अलग-अलग देशों के साथ संबंध विकसित कर रहा है। भूटान, बांग्लादेश, भारत और नेपाल बिम्सटेक को शामिल करते हुए बीबी आई एन, जिसमें बंगाल की खाड़ी के तट पर स्थित देश शामिल हैं, भारत के व्यापार परिप्रेक्ष्य से महत्वपूर्ण महत्व रखते हैं। जबकि आसियान और अफ्रीकी देशों के साथ भारत का संबंध और सहयोग जी-7, संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, जापान और फ्रांस जैसे विभिन्न औद्योगिक रूप से शक्तिशाली देशों को स्पष्ट रूप से स्वागत योग्य संकेत है, साथ ही, यह पड़ोसियों के साथ भारत के संबंधों की कीमत पर नहीं होना चाहिए।



1.5 पर्यावरण के क्षेत्र में वार्तालाप

जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के समकालीन राजनीति के मुख्य कारक हैं। बढ़ते वैश्विक तापमान को ध्यान में रखते हुए, अनियमित मानसून पद्धति, बार-बार बाढ़ और गिरते जल स्तर दुनिया भर के बुद्धिजीवियों और शिक्षाविदों के लिए आशंकाओं का क्षेत्र है। उर्वरक और गहरे बोरवेल के अत्यधिक उपयोग से स्थिति और खराब हो रही है। शीत युद्ध के बाद की अवधि में, भारत 1992 के रियो-पृथ्वी शिखर सम्मेलन से पहले भी जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क सम्मेलन (UNFCCC) में प्रमुख वार्ताकारों में से एक बनकर उभरा। गंभीर चिंताओं का विषय है राजनीतिक प्रतिष्ठान के लिए वैकल्पिक रणनीति पर पुनर्विचार करने के लिए ऐसा वातावरण बनाने में सक्षम नहीं होना, जो लोगों को भारत के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र और अन्य महानगरीय और औद्योगिक केंद्रों में स्वच्छ हवा में साँस लेने में सक्षम बना सके। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि संसद और राज्य विधानसभाओं के लिए प्रत्येक आम चुनाव में राजनीतिक दलों के घोषणा-पत्रों में कल्याणकारी मुद्दे शामिल हैं। इस बीच, एक उल्लेखनीय विकास में, राजनीतिक दल हाल ही में भारतीय राज्य पंजाब में संपन्न विधानसभा चुनावों में पर्यावरणीय मुद्दों पर बहस और चर्चा में लगे हुए हैं। ऐसा लगता है कि लोग पर्यावरण और सतत विकास के प्रति बड़े पैमाने पर जागरूकता विकसित कर रहे हैं, वह सकारात्मक संकेत है। 1990 के दशक की शुरुआत में, भारत ने कहा कि कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन की उच्च प्रति व्यक्ति आय बढ़ती ग्लोबल वार्मिंग के लिए जिम्मेदार है। इसने विभिन्न देशों के लिए विभेदित दृष्टिकोण की माँग की। दूसरे शब्दों में, पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति प्रतिक्रिया विकसित और विकासशील देशों से भिन्न होनी चाहिए। इस प्रयास से बहुत पहले, दुनिया के कई शहरों में कई सम्मेलनों का आयोजन किया गया था। आर्द्रभूमि पर 1971 का रामसेर सम्मेलन 1971 में ईरान में आयोजित किया गया था, जिसमें भारत 1975 में एक पार्टी बन गया था। वह क्षेत्र जो पूरे वर्ष पानी में डूबा रहता है और उस जल निकाय में अपेक्षाकृत छोटे पौधे होते हैं और झींगा इस सम्मेलन के कानूनों द्वारा संरक्षित होते हैं। वह क्षेत्र जो पूरे वर्ष पानी में डूबा रहता है और उस जल निकाय में अपेक्षाकृत छोटे पौधे होते हैं और झींगा इस सम्मेलन के कानूनों द्वारा संरक्षित होते हैं। लगातार कार्बनिक प्रदूषकों की रोकथाम का सम्मेलन (पीओपी) 2001 में स्टॉकहोम में आयोजित किया गया था, जिसमें भारत 2004 में एक पार्टी बन गया और उसी वर्ष अपनाया गया।



पहला पृथ्वी शिखर सम्मेलन जिसे अन्यथा पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (UNCED) या रियो-शिखर सम्मेलन के रूप में जाना जाता है, 1992 में ब्राजील के रियो डी जेनेरो में आयोजित किया गया था। जलवायु परिवर्तन पर प्रसिद्ध संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (UNFCCC) प्रतिभागी देशों द्वारा अपनाया गया था। तीन प्रमुख दस्तावेज जैव विविधता पर सम्मेलन, मरुस्थलीकरण का मुकाबला करने के लिए सम्मेलन और एजेंडा-21 जैसे शिखर सम्मेलन के परिणाम हैं। एजेंडा-21 सतत विकास पर एक वैश्विक कार्य योजना घोषित करना है, जिसका उद्देश्य राष्ट्रों द्वारा अक्षर और भावना के साथ लागू किया जाना है। हाल ही में सीओपी-26 2021 में स्कॉटलैंड के ग्लासगो में संपन्न हुआ था। संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएस) जो नवंबर 2020 के बाद से पेरिस समझौते सीओपी-21 से बाहर था, 2020 में राष्ट्रपति के बदलाव के बाद फिर से सीओपी-26 में लौट आया। अब वह 2050 तक कार्बन नेट-0 प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध है, जबकि चीन और भारत को क्रमशः 2060 और 2070 तक इस लक्ष्य को प्राप्त करना है। पार्टियों का पहला सम्मेलन (सीओपी), हालाँकि, जर्मनी में आयोजित किया गया था। क्योटो प्रोटोकॉल या COP-3 जो जापान में 1997 में आयोजित किया गया था, कुछ मामलों में महत्वपूर्ण है। पहले उदाहरण में, सदस्य देशों के लिए अंतर्राष्ट्रीय कानूनी रूप से बाध्यकारी संधि थी। सभी प्रतिभागी देश एक समझौते में पहुँचे जहाँ यह घोषणा की गई थी कि कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को 2008-2012 के बीच पार्टियों द्वारा समयबद्ध तरीके से कम किया जाएगा। वैश्विक तापमान में वृद्धि को पूर्व-औद्योगिक युग तक 1.5 डिग्री के भीतर रखने का निर्णय लिया गया था। विकसित देशों ने विकासशील देशों को वित्तीय सहायता के रूप में हर साल एक अरब डॉलर की वित्तीय सहायता देने का वादा किया था। इसके अलावा भारत ने 72 हरित देशों के सहयोग से कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को समयबद्ध तरीके से कम करने पर जोर दिया। यह प्रोटोकॉल 2005 में 116 देशों द्वारा हस्ताक्षर के साथ लागू किया गया था। दूसरी ओर, विकसित देशों ने विकासशील देशों से स्वच्छ विकास तंत्र (सीडीएम) पर आधारित परियोजनाएँ लेने के लिए कहा। हालाँकि शुरू में भारत इस प्रस्ताव से सहमत नहीं था लेकिन बाद में उसने विभिन्न औद्योगिक निकायों और संघों के दबाव में इसे स्वीकार कर लिया। यह निर्णय लिया गया था कि 2008 से 2012 के बीच हर साल कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को पाँच प्रतिशत कम किया जाएगा। 2008 के बाद से, भारत ने पानी, सौर और नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता पर ध्यान केंद्रित करना शुरू कर दिया। वास्तव में, पर्यावरण के मुद्दे लंबे समय से राजनीतिक दलों के लिए बड़े एजेंडे का हिस्सा नहीं थे, लेकिन अब शिक्षा के बढ़ते स्तर के साथ, युवा पर्यावरण और



सतत विकास से संबंधित मामलों पर गंभीर हो रहे हैं। तथ्य की बात के रूप में, पहले, वरिष्ठ और अनुभवी राजनयिक जलवायु वार्ता में शामिल थे। पिछले कुछ समय से, व्यक्तित्व राजनीति और संबंध को विभिन्न पर्यावरण सम्मेलनों और शिखर सम्मेलनों में बातचीत का हिस्सा माना जा रहा है। 2007 में इंडोनेशिया के बाली, 2009 में कोपेनहेगन और 2011 में डरबन में कई दौर की बातचीत आयोजित की गई थी। इसके अलावा, यह पहले से ही जी-8+5 और जी-20 शिखर सम्मेलनों में उच्च तालिका में था। दरअसल, यह जलवायु वार्ता के संबंध में एक अशांत चरण था।

इस बीच, 2015 के पेरिस समझौते ने जलवायु वार्ता प्रक्रिया में बदलाव को चिह्नित किया। यहाँ भारत ने 2025 तक कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को 33-35 प्रतिशत तक कम करने का वादा किया था। भारत का दावा है कि वह अपने कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन का 21 प्रतिशत कम करने में सक्षम है और बाकी वह जल्द ही हासिल करने जा रहा है। नवंबर 2020 में विश्व नेताओं के साथ एक समीक्षा सम्मेलन में, प्रधानमंत्री ने यह स्पष्ट किया कि भारत ने नवीकरणीय स्रोत से 168 गीगावाट बिजली का उत्पादन किया है। इसका लक्ष्य 2030 तक अपने उत्पादन को 450 गीगावाट तक बढ़ाना है। पेरिस समझौता मूल रूप से वित्तीय सहायता, तकनीकी सहायता और कार्बन व्यापार में सहायता प्रदान करने के लिए सहमत हुआ। दुर्भाग्य से, अधिकांश वादों को न तो पूरा किया गया है और न ही विकसित देशों की ओर से प्रतिबद्धता दिखाई देती है।

2014 में एनडीए के सत्ता में आने के बाद से, प्रधानमंत्री ने पर्यावरण को साफ करने के लिए कई कदम उठाए हैं। स्वच्छ भारत, भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की जयंती पर 2 अक्टूबर को शुरू की गई एक ऐसी पहल है, जिसके कई व्यापक आयाम हैं। इसका उद्देश्य न केवल भारत को शौच से मुक्त बनाना है, बल्कि 2022 तक एकल उपयोग वाले प्लास्टिक पर प्रतिबंध लगाने का वादा किया गया है। कई नीतिगत पत्रों, जागरूकता अभियानों और भाषण में सरकार द्वारा इसका पूर्वाभ्यास किया जा रहा है। इसी तरह का प्रयास प्रधानमंत्री ने 2019 में 15 अगस्त को अपने स्वतंत्रता दिवस के भाषण में किया था। सरकार के बड़े प्रमुख कार्यक्रमों में से एक माने जाने वाले उजाला योजना के तहत, यह गरीब महिलाओं को मुफ्त में (एलपीजी) कनेक्शन प्रदान कर रहा है। महिलाओं पर विशेष ध्यान देने के साथ, सरकार का उद्देश्य उन्हें धुएँ से मुक्त करना है, जो काफी हद तक उनके स्वास्थ्य और बच्चों को भी प्रभावित करता है। भारत ने फ्रांस के सहयोग से अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन (ISA) की स्थापना की है, जिसका मुख्यालय गुरु ग्राम, हरियाणा में स्थित है। अब सदस्यों की संख्या बढ़कर 120 हो गई है। संयुक्त राज्य अमेरिका हाल ही में एक सदस्य के



रूप में शामिल हो गया है, हालाँकि अमेरिकी कांग्रेस द्वारा अनुसमर्थन के लिए इंतजार कर रहा है। ग्लासगो, स्कॉटलैंड में COP-26 सम्मेलन की साइड-लाइन पर, ब्रिटेन के अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन और ग्रीन ग्रिड पहल ने एक सूर्य, एक ग्रिड और एक दुनिया लॉन्च की। कई बिंदुओं को COP-26 के परिणाम के रूप में सूचीबद्ध किया जा सकता है। सबसे पहले, भारत 2030 तक जीवाश्म ईंधन पर अपनी निर्भरता को 50 प्रतिशत तक कम करने के लिए प्रतिबद्ध है। दूसरे, यह 2030 तक सौर ऊर्जा के माध्यम से अपने बिजली उत्पादन को 4500 गीगावाट तक बढ़ाने के लिए तैयार है। तीसरा, इसका उद्देश्य इसी अवधि में कार्बन डाइऑक्साइड को 30 प्रतिशत तक कम करना है। चौथा, निस्संदेह, भारत के प्रधानमंत्री ने उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक ट्रिलियन डॉलर की माँग की। अंत में, भारत द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को कम करने के लिए अपने वन क्षेत्र का विस्तार करने की संभावना है। इसके लिए भारत आने वाले वर्षों में अधिक-से-अधिक इलेक्ट्रिक वाहनों को प्रोत्साहित करने के लिए भी प्रतिबद्ध है। इसके लिए वह पुराने पेट्रोल और डीजल मॉडल के स्थान पर खरीदारों को वित्तीय प्रोत्साहन दे रहा है।

1.6 सुरक्षा रणनीति

आंतरिक और बाहरी रूप से लोगों को सुरक्षा प्रदान करना देश की संप्रभु व्यवस्था के प्राथमिक राष्ट्रीय हितों में से एक है। जबकि बाहरी रूप से, क्षेत्रीय अखंडता की रक्षा करना और बाहरी खतरों से नागरिकों की रक्षा करना भारत सहित सभी देशों के लिए घरेलू मोर्चे पर प्रमुख चुनौतियाँ हैं, यह सरकारों की जिम्मेदारी है कि वे गरीबी उन्मूलन, आंतरिक संघर्ष से निपटने और राज्यों में चरमपंथी हिंसा, सांप्रदायिकता से लड़कर आंतरिक सुरक्षा सुनिश्चित करें। रणनीति शब्द एक राष्ट्र की क्षमता को निष्पादित करने के विज्ञान और कला को संदर्भित करता है जो युद्ध के समय में लोगों के लिए सुरक्षा और लंबे समय में शांति सुनिश्चित कर सकता है। नव उभरते हुए देश भारत में राष्ट्र निर्माण के लिए संसाधनों को समर्पित करना कठिन कार्य था। कई सुरक्षा घटकों को यहाँ रेखांकित किया गया है, जिन्हें बाद में निपटाया जा सकता है। सबसे पहले, भारत 1998 में पोखरण-II के आयोजन के बाद एक परमाणु शक्ति के रूप में उभरा। दूसरे, भारत-पाकिस्तान और भारत-चीन के बीच बकाया सीमा विवाद हैं, जो स्वतंत्रता के बाद से भारी राजनीतिक और सुरक्षा विकास के गवाह और आज के भारत में रह रहे लोगों के लिए सुरक्षा चिंता का गहरा क्षेत्र बना हुआ है। भारत पहले ही 1947-48, 1965 और 1999 में जम्मू और कश्मीर में कारगिल सेक्टर में और 1971 में पाकिस्तान के साथ



चार बार सामना कर चुका है, जिसके परिणामस्वरूप पूर्वी-पाकिस्तान का विघटन हुआ। भारत और चीन दोनों 1962 में आँखों से आँखों में भिड़ गए थे। तीसरा, आतंकवाद ने 1990 के बाद से पहले से ही प्रचलित मुद्दों के साथ एक नई समस्या को जोड़ा। अकेले जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद ने हजारों निर्दोष लोगों की जान ले ली है। इस समस्या के तंबू देश के विभिन्न भागों में फैल गए हैं। उन घटनाओं में सशस्त्र बलों, पुलिस और नागरिकों को निशाना बनाया गया है और उनकी हत्या की गई है। चौथा, भारत देश उत्तर-पूर्वी भागों में उग्रवाद की समस्याओं का सामना कर रहा है। विभिन्न राज्यों में मूल राज्य से विभाजित करने के लिए अलगाववादी आंदोलन हैं। भाषा आंदोलन और जातिगत आंदोलन कभी-कभी आंतरिक राजनीतिक स्थिति को बढ़ा रहे हैं। अंत में, दर्जनों से अधिक राज्यों में नक्सल या पीपुल्स वार गुप (पीडब्ल्यूजी) आंदोलन और छोटे हथियारों के प्रसार जैसी नई सुरक्षा समस्याएँ देश की शांति और स्थिरता के लिए बड़ी चुनौतियाँ रही हैं। इसके अतिरिक्त, समुद्र में और पड़ोसी देशों के साथ मादक पदार्थों की तस्करी, अफगानिस्तान में तालिबान चरमपंथियों द्वारा सत्ता पर कब्जा करने और भारतीय सुरक्षा के दृष्टिकोण से संकेत नहीं मिलता है। ये सकारात्मक संकेत नहीं हैं, भारतीय राजनीतिक और सैन्य प्रतिष्ठानों के लिए हमेशा चिंताजनक कारक बने रहते हैं। इसके अलावा, भारत की लंबी तट रेखा, हिंद महासागर में डिएगो गार्सिया में अमेरिका की उपस्थिति, दक्षिण-प्रशांत भाग में चीन द्वारा बढ़ती गतिविधियाँ निरंतर असुरक्षा और बाहरी खतरों के लिए असुरक्षित हैं। भारत एक शांतिप्रिय देश है, लेकिन यह विभाजन के समय बड़े पैमाने पर प्रवास, धार्मिक हत्या और संपत्ति के विभाजन जैसी असंख्य चुनौतियों से जूझ रहा था। प्रारंभ में तिब्बत के मुद्दे पर भारत और चीन के बीच बहुत अंतर था। जबकि नेहरू के अंतर्राष्ट्रीय कद और सरदार पटेल ने कुछ मुद्दों को संतोषजनक ढंग से हल करने में मदद की, भारत को अभी तक पूर्वी और पश्चिमी दोनों मोर्चों पर चीन और पाकिस्तान के साथ स्थायी शांति और स्थिरता हासिल करनी है।

संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों और सिद्धांतों के प्रति भारत का पालन, गाँधी के अहिंसक स्वतंत्रता संग्राम में इसके नेता की गहरी भागीदारी, पश्चिमी उदारवाद के प्रभाव ने अपने नेताओं के देश को परमाणु नहीं बनाने के लिए प्रेरित किया, क्योंकि यह गहरी जड़ों वाली औपनिवेशिक नींद से उबरने की कोशिश कर रहा था। अमेरिकी पेशकश के बावजूद, भारत दोनों महाशक्तियों से अलग रहा और गुटनिरपेक्षता नीति का पालन किया। गुटनिरपेक्ष संगठन विभाजन के बाद से परिवर्तन के बावजूद देश की प्रमुख सुरक्षा रणनीतियों में से एक बना हुआ है। इतिहास के विभिन्न कालखंडों में



पाकिस्तान द्वारा भारत पर बार-बार युद्ध थोपने और 1962 में चीन द्वारा किए गए हमले ने निश्चित रूप से भारत को परेशान किया और उसे अपने रक्षा तंत्र को मजबूत करने के लिए मजबूर किया। हिंदी-चीनी भाई-भाई, जो 1950 के दशक में भारत में लोकप्रिय नारा था, 1962 में चीन द्वारा कायरतापूर्ण हमले के साथ हिमालय की बर्फ में डूब गया।

प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के साहस और बुद्धि के साथ अगस्त 1971 में यूएसएसआर के साथ शांति, दोस्ती और सहयोग की संधि पर हस्ताक्षर करके भारत को एक मजबूत विदेश नीति का पालन करने में काफी हद तक मदद मिली। अलग-अलग क्षेत्रों में इसकी कड़ी आलोचना की गई। विशेष रूप से, अमेरिका ने इसे एन.ए.एम. नीति के साथ भारत का समझौता करार दिया। यहाँ तक कि भारत जो आजादी और 1950 के दशक के बाद परमाणु शक्ति बनने के लिए तैयार नहीं था, ने 1974 में राजस्थान के पोखरण में अपना पहला परमाणु परीक्षण किया। परमाणु अप्रसार संधि (एन.पी.टी.) पर हस्ताक्षर करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा भारत पर दबाव बनाए जाने के बावजूद, भारत ने इसे भेदभावपूर्ण और एकाधिकारवादी के रूप में आलोचना करते हुए खारिज कर दिया। अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के नेतृत्व वाली सरकार ने 1998 में क्रमशः 11 और 13 मई को राजस्थान के पोखरण में पोखरण-II का आयोजन किया था। संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, ऑस्ट्रेलिया ने परीक्षण की सही निंदा की, उन्होंने भारत पर कठोर आर्थिक प्रतिबंध लगाया। भारत के निकटतम पूर्वी पड़ोसी चीन ने भारत के परमाणु परीक्षण की आलोचना की और कहा कि यह दक्षिण एशियाई क्षेत्र को अस्थिर कर देगा। भारत ने स्पष्ट किया कि परमाणु परीक्षण किसी विशेष देश के खिलाफ निर्देशित नहीं है। हालाँकि, यह भू-राजनीतिक स्थान है, चरमपंथी ताकतों का उदय और कुछ शत्रुतापूर्ण पड़ोसियों की धमकियों ने भारत को परमाणु परीक्षण के लिए मजबूर किया। फिर भी, भारत के तत्कालीन रक्षा मंत्री जॉर्ज फर्नांडिस जनता दल यूनाइटेड (जेडीयू) के कट्टर नेताओं में से एक, परीक्षण को सही ठहराते हैं एवं चीन को प्रथम दुश्मन मानते हैं। भारत के विदेश मंत्री यशवंत सिंह और अमरीका के उप विदेश मंत्री स्ट्रॉब टैलबोट के बीच कई दौर की बातचीत के बाद अमरीका ने भारत के संबंध में अपना रुख नरम कर दिया। नतीजतन, इसने 22 साल बाद अमेरिकी राष्ट्रपति की भारत यात्रा के लिए रास्ता तैयार किया। इसी तरह, भारत के प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भारत-अमेरिका वार्ता प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए सितंबर 2000 में संयुक्त राज्य अमेरिका का दौरा किया। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि यद्यपि यह उस देश में चुनाव प्रचार वर्ष था, राष्ट्रपति क्लिंटन ने भारत-अमेरिका सहयोग को नई ऊँचाइयों पर ले जाने के लिए



भारतीय प्रधानमंत्री को सभी प्रकार का आश्वासन दिया। नतीजतन, भारत और अमेरिका वार्ता प्रक्रिया में लगे हुए थे और रणनीतिक सहयोगी बन गए और 2001 में साझेदारी की ओर अगले कदम (एन.एस.एस.पी.) पर हस्ताक्षर किए। अंतर्राष्ट्रीय माहौल में भारत के बढ़ते महत्त्व और हथियारों के क्षेत्र में स्वच्छ ट्रैक रिकॉर्ड को महसूस करते हुए, अमेरिका ने नागरिक उद्देश्य के लिए परमाणु समझौते के संबंध में एक प्रस्ताव पर सहमति व्यक्त की। इसके लिए संयुक्त राज्य अमेरिका ने अमेरिकी कांग्रेस में देश के घरेलू कानून 123 में संशोधन किए, जिसने अमेरिकी सरकार को भारत के साथ परमाणु समझौते के लिए जाने की अनुमति दी। समझौते की शर्तों के अनुसार, 22 परमाणु रिएक्टरों में से 4 को अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी (आई.ए.ई.ए.) के सुरक्षोपायों के तहत रखा गया था। धीरे-धीरे ऑस्ट्रेलिया, फ्रांस, मंगोलिया, कजाकिस्तान ने भारत को यूरेनियम निर्यात करने की तत्परता दिखाई।

आतंकवाद भारत की क्षेत्रीय अखंडता के लिए एक गंभीर सुरक्षा खतरा बना हुआ है। जम्मू-कश्मीर पिछले तीन दशकों में चरमपंथी समस्या से प्रभावित है। अनगिनत युवा महिलाओं और निर्दोष नागरिकों को कई भयावह घटनाओं में खो दिया गया है। दिल्ली, बेंगलोर, वाराणसी, इलाहाबाद जैसे कई भारतीय शहरों, विशेष रूप से भारत की वित्तीय राजधानी मुंबई ने पिछले तीन दशकों में कई बार निर्दोष लोगों की हत्या देखी है। बांग्लादेश के रास्ते और समुद्री मार्ग के माध्यम से देश को नशीली दवाओं की आपूर्ति का उद्देश्य देश में सुरक्षा परिदृश्य को परेशान करना है। एके-47 राइफल जैसे छोटे हथियारों का इस्तेमाल भी विभिन्न हिस्सों में सांप्रदायिकता बढ़ाने के समय में किया जाता है। साइबर अपराध इंटरनेट सुरक्षा के माध्यम से एक और समस्या है। सुरक्षा से संबंधित वेबसाइटों की अवैध हैकिंग साइबर अपराधियों के हाथों में जानकारी को चाटने में मदद करती है, यह देश के सुरक्षा हित के लिए अच्छा नहीं है।

भले ही भारत अपने संविधान के अनुसार एक धर्मनिरपेक्ष देश है, लेकिन यह देश के विभिन्न राज्यों में सांप्रदायिक नरसंहार का गवाह है। विशेष रूप से उत्तरी भाग समय-समय पर सांप्रदायिक हिंसा का अनुभव करता है। देश के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में 1984 का सिख दंगा, उत्तर प्रदेश के अजोध्या में 1992 का बाबरी मस्जिद विध्वंस, 2002 में गोधरा दंगा, 2015 में मुजाफराबाद और दादरी की घटनाएँ इस उपरोक्त तर्क को मजबूत करती हैं। देश की एकता और अखंडता केंद्र और राज्य दोनों सरकारों के लिए बड़ी चुनौती बनी हुई है। पीपुल्स वार ग्रुप द्वारा हिंसक गतिविधियाँ घरेलू स्थिति को खराब करने के लिए काफी हद तक जिम्मेदार थीं। यद्यपि यह खतरा धीरे-धीरे



लुप्त होता जा रहा है, फिर भी यह झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र के पिछड़े क्षेत्र जैसे कई अल्प विकसित राज्यों में प्रचलित है। जाहिर है, यह सरकार का कर्तव्य है कि वह विभिन्न राज्यों में असमान वृद्धि को रोके। इसके अलावा, जातिगत हिंसा, महिलाओं, बच्चों और वृद्धों का उत्पीड़न सामाजिक असुरक्षा के क्षेत्र हैं, जिन्हें घटक राज्यों द्वारा सर्वोच्च प्राथमिकता के साथ निपटाए जाने की आवश्यकता है।

चूँकि भारत एक विकासशील देश है, इसलिए तेज आर्थिक विकास के लिए उसे देश के तेजी से औद्योगीकरण के लिए आवश्यक कदम उठाने होंगे। साथ ही, इसे सतत विकास और तेजी से औद्योगीकरण के बीच संतुलन बनाना होगा। नए शुरू किए गए स्टार्ट-अप कार्यक्रमों का उद्देश्य वास्तव में देश को एक आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था बनाना है। कुशल युवा आबादी, कुशल प्रौद्योगिकी देश में क्षमता निर्माण की सुविधा प्रदान कर सकती है, जो केवल आर्थिक प्रगति को तेज करने में मदद कर सकती है। एक और आयाम राज्यों के क्षेत्रों में लोगों के बीच बढ़ता असंतोष है क्योंकि उन्हें औद्योगीकरण और बड़ी बिजली परियोजनाओं और नदी बाँधों की स्थापना के नाम पर अपनी मूल भूमि से विस्थापित किया जा रहा है। टाटा के नैनो कार कारखाने के खिलाफ पश्चिम बंगाल राज्य के सिंगूर में जनता का आक्रोश, दक्षिण कोरियाई टाइकून पुस्को के खिलाफ बंदरगाह-शहर पारादीप में आंदोलन, वेदांता एल्यूमिना समूहों के खिलाफ लांजीगढ़ में जनजातीय विरोध प्रदर्शन राजनीतिक प्रणाली को चुनौती देने वाले स्पष्ट उदाहरण हैं। गुजरात और मध्य प्रदेश में नर्मदा बचाओ आंदोलन एक ऐसा स्पष्ट उदाहरण है, जो बहस को और बढ़ाता है।

1.7 निष्कर्ष

यद्यपि किसी देश की संप्रभु-सरकार का प्राथमिक हित अपनी क्षेत्रीय अखंडता की रक्षा करने और अपने नागरिकों को सुरक्षा की गारंटी देने के लिए है, जो इसके अंदर और बाहर रह रहे हैं, व्यापार, पर्यावरण और सामाजिक सुरक्षा की उपेक्षा नहीं की जा सकती है जो समकालीन समय में प्रमुख कारक हैं। मानव सुरक्षा जैसी नई तरह की सुरक्षा अब अतीत की तुलना में सामाजिक विज्ञान को अधिक मजबूती से आगे बढ़ा रही है। वैश्विक व्यापार भारत सहित कई देशों की अर्थव्यवस्था के प्रमुख चालकों में से एक है, जो अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की जड़ में शक्ति को मापने में मदद कर सकता है। 1970 के दशक में जोसेफ नाई जूनियर, जोसेफ एस नाई, रॉबर्ट ओ कोहेन और बाल्डुइन जैसे नवउदारवादी विद्वानों के उदय के साथ, सत्ता-राजनीति के यथार्थवादी प्रवचन को बदल दिया। उन्होंने



बड़े पैमाने पर अर्थव्यवस्था पर विशेष रूप से जोर दिया; व्यापार प्रतिस्पर्धा राष्ट्र राज्यों को प्रोत्साहित करने के लिए केवल हथियार रखने की तुलना में सहयोग प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण चालक है। पूरी दुनिया आज पर्यावरणीय खतरों के कारण अपने अस्तित्व के खतरे में है। बार-बार आने वाली बाढ़ और सूखे जैसी स्थिति, अनियमित मानसून, भीषण गर्मी की लहर जानवरों और पौधों के लिए गंभीर चुनौतियाँ खड़ी कर रही है। नेता बिना किसी वांछित परिणाम के हर साल बैठक कर रहे हैं। 1992 में ब्राजील में रियोडीजनेरो के पृथ्वी शिखर सम्मेलन ने 21वीं सदी के लिए एक एजेंडा निर्धारित किया, जिसका उद्देश्य सतत विकास प्रक्रिया में तेजी लाना था। सीओपी की बैठकें 1995 से हर साल आयोजित की जा रही हैं। 1997 में तीसरा सीओपी शिखर सम्मेलन उल्लेखनीय है क्योंकि इसने चरणबद्ध तरीके से कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को कम करने और दुनिया के तापमान को पूर्व-औद्योगिक युग तक लाने का फैसला किया। इसने विकसित देशों पर कई जिम्मेदारियाँ तय कीं जैसे वित्तीय सहायता प्रदान करना, प्रौद्योगिकी की पेशकश करना, कार्बन व्यापार में सहयोग करना आदि। यह अलग बात है कि उन प्रयासों ने वांछित परिणाम नहीं दिए। COP-21 पेरिस में आयोजित किया गया था और विकसित देशों के लिए लक्ष्य निर्धारित किया गया था। हाल ही में, सभी सदस्यों ने नवंबर 2021 में ग्लासगो, स्कॉटलैंड में मुलाकात की। भारत 2030 तक जीवाश्म ईंधन के उपयोग को 50 प्रतिशत तक कम करने के लिए प्रतिबद्ध है। यह 450 मेगावाट नवीकरणीय स्रोत से बिजली पैदा करने के लिए तैयार है। यह 2070 तक कार्बन शुद्ध शून्य प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत ने पेरिस समझौते और ग्लासगो शिखर सम्मेलनों द्वारा निर्धारित सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए पहले ही कई कदम उठाना शुरू कर दिया है। यह अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन की शुरुआत करने में सबसे आगे रहा है। हाल के वर्षों में सदस्यों की संख्या में 120 से अधिक की वृद्धि हुई है। एक महत्वपूर्ण कदम में, आईएसए और ग्रीन ग्रिड पहल, ब्रिटेन ने COP-26 शिखर सम्मेलन की साइड-लाइन पर “एक विश्व, एक ग्रिड और एक सूर्य” का आह्वान किया है।

इस पाठ का एक और महत्वपूर्ण पहलू सुरक्षा है, जो राष्ट्र-राज्य प्रणाली के अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण बनी हुई है। गरीबी उन्मूलन, आंतरिक संघर्ष, उग्रवादी हिंसा से लड़ना, सांप्रदायिकता आंतरिक समस्याएँ हैं, जबकि एक तरफ भारत की सुरक्षा के लिए गंभीर खतरे पैदा करती हैं, बाहरी रूप से, सीमा की रक्षा करने वाली क्षेत्रीय अखंडता की रक्षा करना दूसरी ओर भारत सहित सभी देशों के लिए प्रमुख चुनौतियाँ हैं। रणनीति शब्द एक राष्ट्र की क्षमता को निष्पादित करने के विज्ञान और



कला को संदर्भित करता है, जो युद्ध के समय में लोगों के लिए सुरक्षा और लंबे समय में शांति सुनिश्चित कर सकता है। नव उभरते हुए देश भारत के लिए राष्ट्र निर्माण के लिए संसाधनों को समर्पित करना कठिन कार्य था। कई सुरक्षा घटकों को यहाँ रेखांकित किया गया है, जिन्हें बाद के पैराग्राफ में निपटाया जा सकता है। सबसे पहले, भारत 1998 में पोखरण-II के आयोजन के बाद एक परमाणु शक्ति के रूप में उभरा। दूसरे, भारत और पाकिस्तान और भारत के बीच बकाया सीमा विवाद हैं और चीन हर एक भारतीय के लिए सुरक्षा चिंता का एक गहरा क्षेत्र बना हुआ है, जिन्होंने स्वतंत्रता के बाद से शानदार राजनीतिक और सुरक्षा विकास देखा है और जो आज के भारत में रह रहे हैं। भारत पहले ही 1947-48, 1965 और 1999 में जम्मू और कश्मीर में कारगिल सेक्टर में और 1971 में पाकिस्तान के साथ चार बार सामना कर चुका है, जिसके परिणामस्वरूप पूर्वी-पाकिस्तान का विघटन हुआ। भारत और चीन दोनों 1962 में आँखों से आँखों में भिड़ गए थे। तीसरा, आतंकवाद ने 1990 के बाद से पहले से मौजूद मुद्दों के साथ एक नई समस्या जोड़ी। अकेले जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद ने हजारों निर्दोष लोगों की जान ले ली है। उन घटनाओं में सशस्त्र बलों, पुलिस और नागरिकों को निशाना बनाया गया है और उनकी हत्या की गई है। चौथा, भारत देश के उत्तर-पूर्वी भागों में उग्रवाद की समस्याओं का सामना कर रहा है। विभिन्न राज्यों में मूल राज्य से विभाजित करने के लिए अलगाववादी आंदोलन हैं। भाषा आंदोलन और सांप्रदायिक तनाव कभी-कभी घरेलू राजनीतिक स्थिति को बढ़ा रहे हैं। अंत में, दर्जनों से अधिक राज्यों में लोगों के युद्ध समूह आंदोलन जैसी नई सुरक्षा समस्याएँ नशीली दवाओं की तस्करी और नेपाल और बांग्लादेश के माध्यम से छोटे हथियारों के प्रसार और समुद्री मार्ग के माध्यम से, सांप्रदायिकता देश की शांति और स्थिरता के लिए नई चुनौतियों को फेंक रही हैं। इसके अतिरिक्त, समुद्र में और पड़ोसी देशों के साथ झरझरा सीमा के माध्यम से मादक पदार्थों की तस्करी, अफगानिस्तान में तालिबान चरमपंथियों द्वारा सत्ता पर कब्जा करने से, भारतीय सुरक्षा के दृष्टिकोण से अच्छी तरह से संकेत नहीं मिलता है। ये सकारात्मक संकेत नहीं हैं, भारतीय राजनीतिक और सैन्य प्रतिष्ठानों के लिए चिंताजनक कारक बने हुए हैं। इसके अलावा, भारत की लंबी तट रेखा, हिंद महासागर में डिएगो गार्सिया में अमेरिका की उपस्थिति, दक्षिण-प्रशांत भाग में चीन द्वारा बढ़ती गतिविधियाँ निरंतर असुरक्षा और बाहरी खतरों के लिए असुरक्षित हैं। इसलिए, भारत को आगामी शताब्दी में चुनौतियों का सामना करने वालों का सामना करने के लिए दीर्घकालिक सुरक्षा दृष्टिकोण का पालन करना होगा।



1.8 अभ्यास प्रश्न

1. दुनिया की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के साथ भारत किन प्रमुख व्यापार बाधाओं का सामना कर रहा है, इस पर चर्चा करें।
2. पर्यावरण से संबंधित प्रमुख समझौतों और भारत पर उनके प्रभाव का गंभीर रूप से विश्लेषण करें।
3. भारत के लिए मौजूद सुरक्षा चुनौतियों की विवेचना कीजिए।
4. उन कारकों पर चर्चा करें, जिन्होंने भारत को परमाणु शक्ति के रूप में उभरने के लिए प्रेरित किया।
5. ग्लासगो में पेरिस समझौते और COP-26 के परिणाम और भारत पर उनके प्रभाव की व्याख्या करें।

1.9 संदर्भ-सूची

- Rajmani Lavanya ((2015), “Multilateralism on Climate Change”, in David Malone, C. Raja Mohan and Srinath Raghavan (eds), The oxford Hand book of India’s Foreign Policy, Oxford, Oxford University.
- Gopalan Rajeshr. (2015), “Multilateralism in India’s Nuclear Option: A questionable Default Option”, in David Malone, C. Raja Mohan and Srinath Raghavan (eds), The Oxford Hand Book of India’s Foreign Policy, Oxford, Oxford University Press.
- Dixit J.N. (2003), India’s Foreign Policy from 1947-2003, New Delhi, Picus.
- Pant, Harsh V. Indian Foreign Policy : An Overview, Manchester University press, 2006
- Rajamohan, C. India and the Balance of Power, Foreign Affairs, Vol.85, 2006
- Mahesh Prasad, India’s Foreign Trade From Antiquity to Date, Kalpaz Publication, 2011
- Gateway House, Indian Council on Global Relations, QUAD or SQUAD, <https://www.gatewayhouse.in/quad-or-squad-2/>
- House of Commons Library, UK Parliyamnt, What are the outcomes of COP26?<https://commonslibrary.parliament.uk/what-were-the-outcomes-of-cop26/>



पाठ-2 : भारत एक वैश्विक शक्ति के रूप में : संभावनाएँ और चुनौतियाँ

डॉ. सुराय सोरेन

संरचना

- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 भूमिका
- 2.3 उत्तर औपनिवेशिक राज्य की व्याख्या
- 2.4 भारत की विदेश नीति के सिद्धांत एवं निर्धारक तत्व
- 2.5 गुटनिरपेक्ष आंदोलन
- 2.6 परमाणु नीति
- 2.7 आर्थिक नीति
- 2.8 दक्षिण एशिया में भारत की भूमिका
- 2.9 अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत का महत्त्व एवं महत्त्वाकांक्षा
- 2.10 उपसंहार
- 2.11 अभ्यास प्रश्न
- 2.12 संदर्भ-सूची

2.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी—

- इस अध्याय में विद्यार्थी उत्तर औपनिवेशिक राज्य और भारत की विदेश नीति के सिद्धांतों को समझ सकेंगे।
- साथ-ही-साथ वे दक्षिण एशिया और वैश्विक राजनीति में भारत के महत्त्व के बारे में भी समझेंगे।



2.2 भूमिका

भारत की विदेश नीति ने अनेक विश्लेषणात्मक आयामों को दर्शाया है। ऐसा करने में यह नैतिक सिद्धांतों के संकल्प से लेकर जो कि पारंपरिक लोकाचार, ऊर्जा और विश्व के निराशाजनक परिस्थितियों में भी विश्व का पथ-प्रदर्शक बनने की इच्छा में गहराई से अंतर्निहित है, विश्व को अभिनव विचार प्रदान करता है। भारत की विदेश नीति अपनी भौगोलिक अखंडता की रक्षा करने, विचारों और कार्यों में स्वायत्तता बनाए रखने के साथ-साथ अपनी गौरवशाली सभ्यता के ज्ञान पर टिके रहने में सफल रही है। भारत की विदेश नीति केवल विश्लेषण का विषय नहीं है, बल्कि एक अच्छी तरह से तैयार की गई नीतिगत प्राथमिकताएँ हैं, जिसे विश्व में अनुकरण किया जा सकता है। भारतीय विदेश नीति यह दर्शाती है कि कैसे एक देश शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व, आपसी सहयोग और संप्रभुता और प्रतिष्ठा के लिए आपसी सम्मान के सिद्धांतों के आधार पर वैश्विक व्यवस्था को चलाने में प्रभावी भूमिका निभा सकता है। भारत की विदेश नीति भारत के मूल्य आधारित सिद्धांत के दृष्टिकोण के कारण वैश्विक व्यवस्था में भारत की स्थिति को अद्वितीय बनाती है। अपनी विशिष्टता और विशालता के कारण भारत की विदेश नीति को श्रेणीबद्ध या वर्गीकृत करना कठिन है। अक्सर भारत की विदेश नीति में शामिल जटिलता की प्रकृति के कारण इसे समझना मुश्किल हो जाता है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के विभिन्न सिद्धांत भी भारत की विदेश नीति को उसके विविध आयामों के कारण समझाने में अपर्याप्त हो जाते हैं। अपनी स्वतंत्रता के बाद से भारत ने दुनिया की विभिन्न समस्याओं से निपटने के लिए अलग-अलग दृष्टिकोण अपनाए हैं। इसलिए भारत की विदेश नीति का विश्लेषण और अध्ययन करना अत्यंत विवेकपूर्ण कार्य हो जाता है, जब भारत एक संप्रभु राष्ट्र के रूप में अपनी स्वतंत्रता के पचहत्तर वर्ष पूरे कर चुका है। विश्लेषण अत्यधिक अंतर्लयी हो जाता है क्योंकि भारत को लंबे समय तक औपनिवेशिक शासन झेलना पड़ा था। यह समझना आवश्यक हो जाता है कि भारत ने अपनी स्वतंत्रता के बाद कैसा प्रदर्शन किया है और क्या भारत अभी भी अपनी विदेश नीति के विमर्श में निरंतरता दिखाता है, जो उसे इतिहास से विरासत में मिला है।

सौ से अधिक वर्षों का लंबा औपनिवेशिक शासन भारत के लिए एक बहुत ही विनाशकारी समय था। भारत ने न केवल अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता खो दिया था, बल्कि आर्थिक रूप से भी कमजोर हो गया था। औपनिवेशिक शासन ने भारत को सामाजिक, वैचारिक और भावनात्मक दृष्टिकोण से भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया। औपनिवेशिक शासन ने सांप्रदायिक विभाजन को बढ़ाया और



सामाजिक गठजोड़ को कमजोर किया। राजनीतिक स्वतंत्रता के हास के कारण भारत को एक असभ्य बर्बर देश के रूप में दुनिया भर में उपहास झेलना पड़ा। इसने न केवल राष्ट्र के मनोबल को प्रभावित किया, बल्कि एक सकारात्मक दृष्टिकोण में राष्ट्रीय आंदोलन के बीज भी बोए, जिसके परिणामस्वरूप 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। भारत में औपनिवेशिक शासन की अवधि न केवल महान संघर्ष की अवधि थी, बल्कि राष्ट्र निर्माण, राष्ट्रीय लोकाचार को फिर से परिभाषित करने, प्राचीन ज्ञान और बुद्धिमत्ता की खोज और राजनीतिक और सामाजिक संरचना के आत्म मूल्यांकन का भी समय था। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान प्राप्त अनुभव और भारतीय परंपरा, ज्ञान और व्यावहारिक राजनीति के निश्चय ने स्वतंत्र भारत की विदेश नीति की रूप रेखा को तय किया है।

2.3 उत्तर औपनिवेशिक राज्य की व्याख्या

उत्तर औपनिवेशिक राज्य का अध्ययन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में राज्यों की प्रणाली के अध्ययन में एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना को दर्शाता है। यह घटना मानव इतिहास में उपनिवेशवाद की एक दुखदायी घटना को प्रदर्शित करती है, जो लगभग दो सौ वर्षों के लिए संसार में एक सार्थक छोटी आबादी द्वारा बड़ी आबादी की व्यापक गुलामी का प्रतीक है। इसलिए उत्तर-औपनिवेशिक का अर्थ उस समय और स्थान से है, जिसने उपनिवेशवाद को देखा है या वो विश्व व्यवस्था है, जो औपनिवेशिक काल के अंत के बाद उभरी है। दूसरे अर्थों में उत्तर औपनिवेशिक वह विश्व व्यवस्था है, जो औपनिवेशिक दौर का अनुभव करने के बाद आई है। औपनिवेशिक युग बहुत क्रूर था और उसने विज्ञान का सहारा लेकर औद्योगिक उत्पादन के माध्यम से, तथा लाईसेंज-फेयर और 'गोरे आदमी का बोझ' जैसी नई विचारधारा के द्वारा सभ्यता के प्राकृतिक विकास को तोड़ दिया था। इस पुरे प्रकरण में जो सबसे विश्वासघाती था, वह यह कि स्वदेशी लोगों के विकास और उन्नयन के नाम पर उपनिवेशवाद का प्रचार करना था। औपनिवेशिक गतिविधियों ने उपनिवेशित राष्ट्रों में स्थित सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित किया।

गुलामी के अलावा एक और क्रूर पहलू जो औपनिवेशिक काल के दौरान उभरा, वह उपनिवेशी लोगों को बर्बर के रूप में चित्रांकन करना था ताकि उसे निम्न मानव के रूप में दिखाया जा सके। यह न केवल विदेशीय राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन को थोप कर दिया गया बल्कि उपनिवेशित लोगों की कला, संस्कृति, परंपरा और इतिहास को गलत तरीके से प्रस्तुत करके भी किया गया था। उपनिवेशवादियों द्वारा जिन्हें उपनिवेशित किया गया उनके ज्ञान परंपरा को एक



सुनियोजित तरीके से कमजोर किया गया और उस मूल्य प्रणाली को थोपा गया, जो उन्हें उपयुक्त लगता था। इसका उपनिवेशित लोगों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। उपनिवेशीकरण प्रक्रिया ने पारंपरिक प्रथाओं और मूल्य प्रणाली को व्यापक रूप से परिवर्तित किया। अपने क्रूर स्वभाव के बावजूद उपनिवेशवाद ने आधुनिकता तथा आधुनिक ज्ञान और मूल्य प्रणाली को विश्व के समक्ष लाया। परिणामस्वरूप उपनिवेशीकरण प्रक्रिया ने एक नए वैश्विक सामाजिक और राजनीतिक ढाँचे के उद्भव को अग्रसारित किया। जब उपनिवेश काल समाप्त हुआ तो नई संरचना बनी रही और नए स्वतंत्र राष्ट्रों की समझ और सुविधा के अनुसार उस संरचना को आकार दिया गया और परिवर्तन किया गया। यह नई संरचना उत्तर औपनिवेशिक राज्य के अध्ययन का आधार बनी। एक बात जो दुनिया भर में बहुत सामान्य है, वह है उपनिवेशवाद का सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं पर प्रभाव की पुनर्परीक्षा। इस प्रकार उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन एक नई प्रकार की ज्ञान प्रणाली को प्रदर्शित करता है, जो औपनिवेशिक युग के बाद उभरी है।

उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन मौजूदा ज्ञान की पुनर्परीक्षा और विखंडन द्वारा ज्ञान उत्पादन के हर क्षेत्र में पश्चिमी या औपनिवेशिक शक्तियों के आधिपत्य को समाप्त करने का प्रयास करता है। उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन उस समय जटिल हो जाता है, जब उत्तर औपनिवेशिक अध्ययनों का एक सामान्य वर्गीकरण करने का प्रयास किया जाता है। उपनिवेशोत्तर व्यवस्था का अध्ययन करते हुए विभिन्न लेखकों ने अलग-अलग दृष्टिकोण दिए हैं और विभिन्न क्षेत्रों पर बल दिया है। एक आधिकारिक अभिव्यक्ति में एशक्रॉफ्ट, ग्रिफिथ्स और टिफिन ने कहा है कि “हम उपनिवेशवाद के बाद से आज तक साम्राज्यवादी प्रक्रिया से प्रभावित सभी संस्कृति को समाविष्ट करने के लिए ‘उत्तर औपनिवेशिक’ शब्द का उपयोग करते हैं” (एशक्रॉफ्ट, ग्रिफिथ्स और हेलेन 2002: 2)। उन्होंने औपनिवेशिक प्रक्रिया से प्रभावित हर प्रकार की संस्कृति को शामिल करके उत्तर औपनिवेशिक का सामान्य अर्थ को परिभाषित करने का प्रयास किया है।

इस प्रकार उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन में औपनिवेशिक काल से लेकर वर्तमान समय तक निरंतरता है। आज का ज्ञान निर्माण उन परिवर्तनों से प्रभावित है, जो औपनिवेशिक काल के दौरान किए गए थे। लीला गाँधी के अनुसार “उत्तर उपनिवेशवाद को उपनिवेशवाद के बाद के रहस्यमयी स्मृतिलोप के सैद्धांतिक प्रतिरोध के रूप में देखा जा सकता है। यह एक शास्त्रीय परियोजना है, जो औपनिवेशिक अतीत को फिर से देखने, याद रखने और महत्वपूर्ण रूप से परीक्षण करने के अकादमिक कार्य के लिए समर्पित है” (गाँधी 1998: 4)। वह उपनिवेशवादियों और उपनिवेशितों के



बीच परस्पर विरोधी संबंधों के अध्ययन पर भी जोर देती है (इबिड)। औपनिवेशिक युग के दौरान उपनिवेशवादियों और उपनेशितों के बीच संबंधों को समझकर, वर्तमान युग में वैश्विक पश्चिम और शेष विश्व के बीच शक्ति और ज्ञान के बीच संबंधों को समझा जा सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन का एक विशिष्ट स्थान है। उपनिवेशीकरण की पूरी प्रक्रिया विभिन्न राज्यों के बीच संबंध, श्रेष्ठता और वर्चस्व के मूल्यों पर आधारित थी। यही कारण है कि उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययनों ने एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया में अपनी जड़ें जमा ली हैं। ये वे क्षेत्र भी हैं, जिन्हें उपनिवेशवाद के क्रूर शासन का दौर देखना पड़ा था। इस कारण, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन वर्तमान वैश्विक मानदंडों और नैतिक मूल्यों पर सवाल उठाता है, जो वैश्विक न्याय प्रदान करने का दावा करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन, अंतर्राष्ट्रीय समाज निर्माण की नैतिक नींव पर सवाल उठाकर अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के निर्माण में पश्चिमी या यूरोपीय वर्चस्व को चुनौती देता है।

इसलिए उत्तर औपनिवेशिक अध्ययनकर्ता अपनी नींव उन दर्शनों में पाते हैं, जिन्होंने अंतर्राष्ट्रीय समाज और शाश्वत शांति के बारे में बात की है। हालाँकि अमेरिका पर कोलंबस के कब्जे के खिलाफ शुरुआती विरोध आंदोलन या एशिया, अमेरिका, अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया के यूरोपीय उपनिवेशवाद के खिलाफ शुरुआती विरोध आंदोलन ने उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन की समझ को निर्देशित किया है। जिस तरह से गुलामों ने उपनिवेशवादियों के खिलाफ विद्रोह किया और गुलामी के नैतिक, कानूनी और सांस्कृतिक कारणों पर सवाल उठाया, वह अभी भी एक अंतर्राष्ट्रीय समाज बनाने के पश्चिमी मानदंडों को निरस्त करने का प्रमुख आधार है।

उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन सत्य की उन धारणाओं पर प्रश्नचिह्न लगाता है, जिन्हें पश्चिम के राष्ट्रों ने उपनिवेशित लोगों के बारे में प्रचारित किया है। उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन उपनिवेशितों के बारे में उस सत्य को चुनौती देता है, जो पश्चिमी राष्ट्रों के द्वारा माना जाता है क्योंकि पश्चिमी राष्ट्र वास्तव में उपनिवेशितों की स्थितियों को नहीं समझ सकते हैं। एक कारक जो शक्ति-ज्ञान संबंध के रूप में है, पश्चिमी समझ का पक्षधर रहता है। चूँकि अंतर्राष्ट्रीय समाज की वास्तविक समझ को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है, उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन वैश्विक संस्थाओं के निर्माण को अस्वीकार करता है। उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन का मानना है कि वैश्विक संस्थाएँ पश्चिमी समझ के अनुसार बनाई गई हैं, इसलिए यह उत्तर औपनिवेशिक राज्यों के हित या उनके किसी भी



उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता है।

उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन संस्कृति और पहचान के अध्ययन पर भी अपना ध्यान केंद्रित करता है। इससे सबाल्टर्न अध्ययनों का भी विकास हुआ है। संस्कृति और पहचान का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि पश्चिम ने संस्कृति और पहचान का एक निश्चित रूप बनाया है, जो उन्हें बाकी दुनिया से अलग करता है। इसलिए बाकी दुनिया को पश्चिम द्वारा बर्बर माना जाता है। एडवर्ड सईद ने 'ओरिएंट' के बारे में बात की है जो मध्य-पूर्व की संस्कृति और पहचान है और 'ऑक्सीडेंट' जो यूरोप की संस्कृति और पहचान है। सईद के अनुसार ओरिएंट और ऑक्सीडेंट के बीच में जो अंतर है वो मानव निर्मित है (सईद 2003: 5)। ओरिएण्टलिज़्म (प्राच्यवाद) संस्कृति और पहचान के दावे पर उपनिवेशवादियों और उपनिवेशितों के बीच संघर्ष है। औपनिवेशिक प्रभुत्व के कारण शेष विश्व को हिंसक और नियमों का आभाव वाला बताया गया है। उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन इस प्रकार की पहचान को चुनौती देता है।

समकालीन दौर में उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन ने अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन को एक नया आयाम प्रदान किया है। उत्तर औपनिवेशिक समझ ने उत्तर-औपनिवेशिक राज्यों की विदेश नीति को दिशा प्रदान किया है। इस प्रकार उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन विकासशील देशों की विदेश नीति की व्याख्या करता है जो पश्चिमी शक्तियों के प्रभुत्व को चुनौती देते हैं। साथ ही उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन पश्चिमी शक्तियों की विदेश नीति की भी व्याख्या करता है जो अपनी शक्ति के बल पर अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को स्वरूप प्रदान करने में प्रमुख भूमिका निभाती है। उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन के पूरे विमर्श में आदर्श निर्माण, नैतिकता और पश्चिमी समझ को चुनौती देने की प्रक्रिया बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। एक उत्तर औपनिवेशिक राज्य के रूप में भारत ने एक ऐसी विदेश नीति विकसित की है जो नैतिकता पर आधारित है, भेदभाव रहित है और समतामूलक अंतर्राष्ट्रीय समाज के निर्माण में सहायक है।

2.4 भारत की विदेश नीति के सिद्धांत एवं निर्धारक तत्त्व

स्वतंत्रता के लिए एक लंबे संघर्ष और निरंतर राष्ट्रीय आंदोलन के बाद 1947 में भारत को ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता मिली। स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलन ने भारत की विदेश नीति को दिशा एवं स्वरूप प्रदान करने में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। राष्ट्रीय आंदोलन ने भारत को एक



राष्ट्र के रूप में एकजुट भी किया। लंबे औपनिवेशिक शासन के कारण भारत की विदेश नीति में उत्तर औपनिवेशिक विशेषताएँ दिखती हैं। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि लंबे राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान जब राष्ट्रीय नेता भारत की परंपरा, संस्कृति और मूल्यों की समीक्षा, पुनःमूल्यांकन और पुनर्व्याख्या कर रहे थे, ब्रिटिश शासन ने पश्चिमी मूल्यों और व्यवस्था को भारत में बलपूर्वक लागू किया। इस तरह भारत में संसदीय लोकतंत्र प्रणाली, आधुनिक न्यायपालिका और आधुनिक शिक्षा प्रणाली लागू हुआ। भारत की विदेश नीति में भी ब्रिटिश शासन का प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश शासन मजबूत संप्रभुता, शक्ति संतुलन, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और सैन्य शक्ति की सर्वोच्चता पर जोर देता था। यद्यपि ब्रिटिश शासन कठोर और शोषक था, परंतु उनकी मूल्य प्रणालियाँ स्वतंत्र भारत सरकार को विरासत में मिली।

एक उत्तर औपनिवेशिक राज्य के रूप में भारत ने न तो ब्रिटिश व्यवस्था को पूरी तरह से त्याग दिया और न ही वह अपनी परंपरा, संस्कृति और लोकाचार को भूला, जिसे भारत ने पीढ़ियों से संभाल कर रखा हुआ था। उत्तर औपनिवेशिक राज्य की विशेषताओं के कारण भारत एक अनोखी प्रकार की विदेश नीति प्रदर्शित करता है, जिसकी नींव प्राचीन भारतीय मूल्य प्रणाली में है तथा आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली के अनुकूल भी है। इस कारण भारत की विदेश नीति में वैश्विक दबावों का असर नहीं होता है। स्वतंत्रता के बाद से भारत ने अपनी विदेश नीति का जो स्वरूप दिखाया है उसकी जड़ें ऐतिहासिक मूल्यों में हैं।

भारत ने हमेशा विश्व को शांति और सद्भाव में रहने वाली एक इकाई के रूप में देखा है। वसुधैव कुटुम्बकम् (दुनिया एक परिवार है) की प्राचीन अवधारणा ने स्वतंत्रता के बाद से भारत की विदेश नीति को मार्गदर्शन प्रदान किया है। प्राचीन अवधारणा के अंतर्गत, अद्वैत, जो कि एक प्राचीन भारतीय दर्शन है, भारत की विदेश नीति को भी प्रभावित करता है। हाल के वर्षों में अद्वैत ने भारत की विदेश नीति के अध्ययन में स्वीकृति प्राप्त की है। अद्वैत यह मानता है कि "एक राजनीतिक इकाई के रूप में विश्व सदा जुड़ा हुआ है" (शाही 2015: 15)। भारत की विदेश नीति भी दुनिया को एक ऐसी इकाई के रूप में देखती है, जो विश्व स्तर पर जुड़ी हुई है इसलिए भेदभाव और अन्याय को नकारती है। आपस में जुड़ी हुई संसार के बारे में भारत का यह मानना है कि संसाधनों और मूल्यों का समान रूप से वितरण होना चाहिए। विदेश नीति में अद्वैत को शामिल करने का मुख्य उद्देश्य एक ऐसे विश्व का निर्माण करना है, जो भूख, गरीबी और शोषण से मुक्त हो।

स्वतंत्रता के बाद से ही भारत की विदेश नीति बौद्ध सिद्धांतों से भी बहुत प्रभावित हुई है।



पंचशील या पंचसूत्र की अवधारणा ने अन्य देशों के साथ भारत के संबंधों को पोषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पंचशील के रूप में विदेश नीति में पाँच सिद्धांत हैं— “(i) एक दूसरे की अखंडता और संप्रभुता का सम्मान, (ii) परस्पर अनाक्रमण, (iii) एक दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना (iv) समान और परस्पर लाभकारी संबंध (v) शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व”। पंचशील ने भारत को विश्व में एक परोपकारी और गैर-आक्रमक देश के रूप में प्रस्तुत करने में सहायता की है। साथ ही पंचशील ने विश्व में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाने में मदद की क्योंकि पूरा विश्व दो विश्व युद्धों को देखने के बाद शांतिपूर्ण और सहयोगपूर्ण वातावरण चाहता था। भारत शांति और सहयोग के पथ पर चलने वाला राष्ट्र के रूप में उभर चुका था।

भारत की विदेश नीति में विश्व शांति के लिए भारत की प्रवृत्ति, सत्य और अहिंसा के गाँधीवादी सिद्धांतों से आई है। राष्ट्र निर्माण और विदेश नीति में महात्मा गाँधी का प्रभाव बहुत गहरा था।

गाँधी जी की सत्य और अहिंसा की शिक्षा न केवल भारत की विदेश नीति में समन्वित थी, बल्कि पूरे विश्व में उसकी प्रशंसा की जाती थी। गाँधीवादी दर्शन और मूल्यों ने भारत को शक्ति आधारित वैश्विक राजनीति से दूर रखा। परिणामस्वरूप भारत की विदेश नीति ने विश्व शांति और सहयोग पर अपना ध्यान केंद्रित किया।

अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था न केवल शांतिवादी विचारों को स्वीकार करती है, बल्कि यह शक्ति आधारित राजनीति को भी दर्शाती है। इस संसार में राष्ट्र, सुरक्षा और प्रतिष्ठा जैसे विभिन्न उद्देश्यों के लिए युद्ध करते हैं। इसलिए मजबूत सेना का निर्माण भी जरूरी होता है। भारत ने पड़ोसी देशों से सैन्य घुसपैठ को झेला है, इसलिए भारत ने अहिंसक सिद्धांतों पर आधारित विदेश नीति को संशोधित किया और सैन्य शक्ति के तत्व को विदेश नीति में शामिल किया। हालाँकि, एक दुविधा थी कि सैन्य गतिविधियों को कैसे अनदेखा किया जा सकता है। इस दुविधा को समाप्त करने के लिए प्राचीन मूल्य प्रणाली पर आधारित प्राचीन परंपरा और ज्ञान प्रणाली से मार्गदर्शन लिया गया। प्राचीन ज्ञान परम्पराओं में धर्मयुद्ध की अवधारणा मिलती है। अतः भारतीय विदेश नीति, युद्ध की आवश्यकता होने पर धर्मयुद्ध की अवधारणा का उपयोग करती है। “धर्म का अर्थ ब्रह्मांडीय सद्भाव बनाए रखने के लिए उठाये गए सही आचरण होता है” (रॉय 2007: 233)। इसलिए धर्मयुद्ध स्वीकार किया जाता है ताकि व्यवस्था बनी रहे, मत्स्यन्याय समाप्त हो, और न्याय किया जा सके। भारत की सैन्य ताकत भारत को दुश्मन के हमले से बचाने के लिए है तथा भारत किसी राष्ट्र पर आक्रमण



करने में विश्वास नहीं करता है।

भारत को शांति और धर्म जैसे पारंपरिक मूल्यों का गहरा बोध है। स्वतंत्रता के बाद से भारत की विदेश नीति ने मूल्य और नैतिकता पर आधारित कार्य किये हैं। भारत नैतिकता के मार्ग पर चलने में गर्व महसूस करता है और आशा करता है कि संसार में नैतिकता व्यापक रूप से फैलेगी। हालाँकि, अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली में विविध प्रतिस्पर्धी दृष्टिकोण हैं, इसलिए भारत की विदेश नीति नैतिकता से समझौता किए बिना उभरते हुए कूटनैतिक वातावरण के अनुकूल होती गई है।

2.5 गुटनिरपेक्ष आंदोलन

उत्तर औपनिवेशिक राज्य के रूप में भारत ने एक अनोखी विदेश नीति का प्रदर्शन किया है, जो दुनिया में अद्वितीय है। भारत की विदेश नीति की विशिष्टता का कारण भारत द्वारा गुटनिरपेक्ष नीति को अपनाया जाना जा सकता है। भारत के प्रयास के कारण गुटनिरपेक्ष नीति एक वैश्विक आंदोलन बन गई, जिसने बड़ी संख्या में उत्तर औपनिवेशिक और नए स्वतंत्र राज्यों को युद्ध के वेदना से बचाया। 1945 में द्वितीय विश्व युद्ध का अंत होने के बाद शीघ्र ही, शीत युद्ध प्रारम्भ हो गया था। शीत युद्ध दो शक्तिशाली और अलग विचारधारा वाले गुटों के बीच एक अप्रत्यक्ष युद्ध था। अमेरिकी गुट उदार पूँजीवाद पर आधारित विश्व व्यवस्था बनाना चाहता था और दूसरी ओर सोवियत गुट साम्यवाद पर आधारित विश्व व्यवस्था बनाना चाहता था। विचारधारा से प्रेरित यह अप्रत्यक्ष युद्ध पूरी दुनिया को अपनी चपेट में ले रहा था और नए स्वतंत्र राज्य इसके परिणाम भुगत रहे थे।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन को एक उत्तर औपनिवेशिक आंदोलन के रूप में माना जा सकता है। गुटनिरपेक्ष आंदोलन की उत्पत्ति औपनिवेशीकरण प्रक्रिया में निहित है, जिसमें गैर-यूरोपीय राष्ट्रों को उपनिवेश बनाया गया था। औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया अहस्तक्षेप विचारधारा के प्रसार के प्रभाव के रूप में हुई। यूरोपीय देशों के लोग नए बाजारों और प्राकृतिक संसाधनों की खोज के अपने उत्साह के कारण विश्व में भ्रमण करने लगे। सैन्य शक्ति, विज्ञान और प्रौद्योगिकी में अपनी श्रेष्ठता के कारण उन्होंने गैर-पश्चिमी दुनिया को हराया और उन्हें गुलामी के लिए विवश किया। उपनिवेश काल के दौरान नस्लीय भेदभाव प्रारम्भ हो गया जो अभी भी विभिन्न रूपों में मौजूद है। भारत को भी आर्थिक शोषण और नस्लीय भेदभाव का सामना करना पड़ा था। राष्ट्रीय आंदोलन के समय से ही, यानी कि स्वतंत्रता से पहले ही भारतीय नेतागण उदारवादी अर्थव्यवस्था के प्रति सचेत हो गए थे।



भारतीयों से विश्व युद्धों में भाग लेने की उनकी इच्छा के बारे में भी नहीं पूछा गया था। इसलिए भारत की गुटनिरपेक्ष नीति स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले ही विकसित हो गई थी। भारत को स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् उसने किसी भी शक्ति गुट में शामिल नहीं होने और अपनी स्वतंत्र विदेश नीति विकसित करने का निर्णय लिया।

भारत के राजनयिक प्रयासों ने गुटनिरपेक्ष आंदोलन के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुटनिरपेक्ष आंदोलन के फलस्वरूप नए स्वतंत्र राष्ट्रों का एक बड़े गुट का गठन हुआ जो युद्ध में भाग नहीं लेना चाहता था। गुटनिरपेक्ष आंदोलन के परिणाम को निम्नलिखित रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है— “(i) गुटनिरपेक्ष समूह के दबाव ने उपनिवेशीकरण को समाप्त करने की प्रक्रिया को तेज़ किया। साथ ही दो शक्ति गुटों में राष्ट्रों के ध्रुवीकरण को धीमा कर दिया गया था। (ii) गुटनिरपेक्ष समूह ने विश्व के लोगों के ध्यान में लाया कि शक्ति गुटों में शामिल होने का एक वैकल्पिक पक्ष भी था और यह कि शक्ति गुटों की नीति विश्व शांति के हितों में नहीं है। (iii) गुटनिरपेक्ष और एफ्रो-एशियाई समूह ने नए स्वतंत्र देशों को अपने समझ से और स्वतंत्र रूप से कार्य करने के अधिकार को नैतिक समर्थन देकर उनकी मदद की” (रत्नम 1970: 266)।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन को औपचारिक रूप से 1961 में स्थापित किया गया और वर्तमान में 120 सदस्य हैं। ये सदस्य किसी भी शक्ति गुटों के साथ जुड़े हुए नहीं हैं। 1991 में शीत युद्ध की समाप्ति के बाद भी गुटनिरपेक्ष आंदोलन ने उभरती हुई वैश्विक चुनौतियों को स्वीकार करते हुए अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में अपने अस्तित्व और प्रासंगिकता को बनाए रखा है। यह अब जलवायु परिवर्तन और गरीबी उन्मूलन जैसे मुद्दों पर वैश्विक सहयोग को बढ़ावा देने का कार्य कर रहा है। गुट निरपेक्ष आंदोलन के कार्यों को संचालित करने में भारत अभी भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गुटनिरपेक्ष आंदोलन को भारत की सफल विदेश नीति कहा जा सकता है।

2.6 परमाणु नीति

भारत की परमाणु नीति न केवल घरेलू राजनीति में बल्कि वैश्विक स्तर पर भी हमेशा एक ज्वलंत विषय रहा है। उत्तर औपनिवेशिक विमर्श में, परमाणु मुद्दों पर ज्यादा विमर्श नहीं हुआ है क्योंकि परमाणु कार्यक्रम के संचालन में उत्कृष्ट प्रौद्योगिकी और विशाल वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होती है। जापान में 1945 में परमाणु बमों का उपयोग किए जाने के बाद से ही परमाणु मुद्दे वैश्विक



चिंता का विषय बन गए हैं। इससे हुई भारी तबाही ने मानव जाति को झकझोर कर रख दिया था। हालाँकि शक्तिशाली राष्ट्र, विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र में सुरक्षा परिषद के पाँच स्थायी सदस्यों ने परमाणु मुद्दों पर एकाधिकार कर लिया है। सुरक्षा परिषद् के पाँच स्थायी राष्ट्रों ने स्वयं तो परमाणु कार्यक्रम चलाया और परमाणु परीक्षण किए, परन्तु अन्य राष्ट्रों को आर्थिक प्रतिबंध या सैन्य कार्रवाई की धमकी देकर परमाणु कार्यक्रम चलाने से रोक दिया। युद्ध में उपयोग के अलावा भी परमाणु मुद्दों पर वैश्विक विमर्श में शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए परमाणु का उपयोग को भी शामिल किया जाता है। परमाणु मुद्दे पर किसी भी प्रकार के विमर्श पर शक्तिशाली पश्चिमी देशों का वर्चस्व रहता है।

भारत के लिए परमाणु मुद्दा ज्यादातर एक नैतिक मुद्दा रहा है। चूँकि भारतीय सभ्यता पारम्परिक रूप से अत्यधिक नैतिक और संयमपूर्ण थी, इसलिए स्वतंत्रता आंदोलन भी शांतिपूर्ण थी। सत्य और अहिंसा के गाँधीवादी सिद्धांतों ने शत्रु को भी किसी प्रकार का नुकसान पहुँचाने से रोका। इसलिए भारत के लिए अपनी परमाणु नीति का दिशा निर्धारण करना कठिन हो गया। भारत को परमाणु कार्यक्रम की आवश्यकता क्यों है और भारत के पास क्या परमाणु हथियार होने चाहिए, का उत्तर धीरे-धीरे मिलता गया।

परमाणु हथियारों की विनाशकारी प्रकृति के कारण भारत बड़े पैमाने पर परमाणु हथियारों या परमाणु कार्यक्रम के खिलाफ था। भारत के नेतागण और आम जनता ज्यादातर परमाणु कार्यक्रम से सशंकित थी। हालाँकि, विश्व के सामने यह वैज्ञानिक रूप से स्पष्ट हो चुका था कि परमाणु ऊर्जा का उपयोग विकास उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है। यदि भारत परमाणु कार्यक्रम नहीं चलाता है तो भारत विश्व के अन्य देशों से विकास के सूचकांकों में पीछे रह जाता। भारतीय वैज्ञानिक समुदाय ने परमाणु ऊर्जा की उपयोगिता पर जोर डालते हुए परमाणु कार्यक्रम के पक्ष में अपना तर्क प्रकट किया था। भारतीय भौतिक विज्ञानी होमी जे. भाबा ने “भारत के पहले प्रधानमंत्री, जवाहरलाल नेहरू को, भारत को एक औद्योगिक आधार बनाने और व्यापक गरीबी की समस्याओं से निपटने में सक्षम बनाने के लिए परमाणु ऊर्जा अनुसंधान के महत्त्व के बारे में आश्वस्त किया” (गांगुली 1999: 150)। अतः भारत सरकार द्वारा 03 अगस्त, 1954 को परमाणु ऊर्जा विभाग बनाया गया। तब से भारत का परमाणु कार्यक्रम आगे बढ़ने लगा और धीरे-धीरे भारत की परमाणु नीति अपना स्वरूप लेने लगी। “परमाणु हथियारों के अपने सार्वजनिक विरोध के बावजूद, नेहरू ने भाभा को भारत के परमाणु बुनियादी ढाँचे के विकास में एक खुली छूट दी” (एबिड: 151)। हालाँकि इसका मतलब यह नहीं है कि



भारत परमाणु बम बनाने की कोशिश कर रहा था।

जैसे-जैसे भारत की परमाणु नीति विकसित हुई, भारत ने परमाणु हथियारों के वैश्विक उन्मूलन का आह्वान करना शुरू कर दिया। भारत चाहता था कि संसार परमाणु ऊर्जा का उपयोग सिर्फ शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए करे। भारत ने परमाणु हथियारों के वैश्विक उन्मूलन का जैसे ही आह्वान करना प्रारम्भ कर दिया, भारत के आह्वान को अनसुना किया गया तथा इसके विपरीत अमेरिकी और सोवियत गुट परमाणु हथियारों की होड़ में लग गए। भारत ने यह भी पाया कि संसार भेदभावपूर्ण थी क्योंकि परमाणु प्रौद्योगिकी रखने वाले देश शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए भी परमाणु प्रौद्योगिकी को साझा नहीं करना चाहते थे। भारत की परमाणु नीति भू-राजनीतिक जरूरतों के कारण बदलने लगी। 1962 में भारतीय क्षेत्र पर चीनी घुसपैठ के परिणामस्वरूप, भारत ने अपनी सैन्य और परमाणु नीति के बारे में पुनर्विचार करना शुरू कर दिया। जब चीन ने 16 अक्टूबर, 1964 को लोप नोर में अपना पहला परमाणु परीक्षण किया, तो इस परीक्षण ने भारत और चीन के बीच सैन्य संतुलन को बदल दिया। परिणामस्वरूप भारत में परमाणु परीक्षण के पक्ष में लोगों द्वारा माँग बढ़ने लगी। इसका अर्थ यह भी था कि लोगों का परमाणु हथियारों के प्रति विरोध कम होने लगा था।

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत ने यह भी देखा कि सैन्य रूप से कमजोर राष्ट्र का सम्मान नहीं किया जाता है। भारत ने यह भी देखा कि भारत का पड़ोस शत्रुतापूर्ण भावना रखता है जिससे भारत की क्षेत्रीय अखंडता को चुनौती मिलती रहती है। भारत के इस विचार को 1965 और 1971 में भारत-पाकिस्तान युद्ध के कारण और भी बल मिला। भारत ने यह भी पाया कि परमाणु हथियार रखने वाले शक्तिशाली राष्ट्र, परमाणु प्रौद्योगिकी को साझा करने के लिए तैयार नहीं थे और परमाणु आधिपत्य बनाए रखना चाहते थे। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि भारत जैसे राष्ट्रों को परमाणु परीक्षण से रोकने के लिए परमाणु अप्रसार संधि (एनपीटी) को 5 मार्च, 1970 में लागू किया गया। इन परिदृश्यों के कारण भारत ने अपना परमाणु नीति में बदलाव किया। अपने परमाणु नीति में, भारत ने नैतिक और मूल्य आधारित सिद्धांतों को भी नहीं त्यागा। हालाँकि भारत ने परमाणु बम को सुरक्षा प्रदाता और प्रतिष्ठा निर्माता के रूप में स्वीकार किया। इसलिए भारत ने 1974 में अपना पहला परमाणु परीक्षण किया और इसे “शांतिपूर्ण परमाणु विस्फोट” करार दिया।

भारत द्वारा परमाणु परीक्षण को समस्त विश्व ने गौर किया। पश्चिमी देशों ने तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की और भारत की आलोचना की। एक लंदन आपूर्तिकर्ता समूह का गठन किया गया ताकि



एनपीटी का पालन नहीं करने वाले देशों पर परमाणु प्रौद्योगिकी और सामग्रियों के हस्तांतरण पर प्रतिबंधित और नियंत्रण लगाया जा सके। भारत ने पश्चिमी राष्ट्रों के प्रतिक्रियाओं को भेदभावपूर्ण माना। हालाँकि भारत ने वह हासिल किया जो वह हासिल करना चाहता था। भारत ने दुनिया को दिखाया कि भारत एक कमजोर राष्ट्र नहीं है और एक स्वतंत्र विदेश नीति का पालन करता है।

लगभग दो दशकों तक भारत ने एक तरह से यथास्थिति बनाए रखी। इस दौरान भारत ने परमाणु परीक्षण नहीं किया। हालाँकि चीन और पाकिस्तान के बीच बढ़ते गठजोड़ से भारत चिंतित होने लगा और उसे अपने संप्रभुता पर खतरा महसूस होने लगा। इसके अलावा व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि (सीटीबीटी), जिससे परमाणु परीक्षण को प्रतिबंधित किया गया, को 1996 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा अपनाया गया। भारत ने सीटीबीटी को भेदभावपूर्ण करार दिया और इस पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। अपनी सुरक्षा को मजबूत करने के लिए तथा अपनी प्रतिष्ठा को फिर से स्थापित करने के लिए भारत ने 1998 में दूसरे दौर के परमाणु परीक्षण किए। विश्व के अनेक राष्ट्रों ने कड़ी प्रतिक्रिया दी और कुछ पश्चिमी राष्ट्रों ने भारत पर प्रतिबंध लगाए।

भारत द्वारा किए गए 1998 के परमाणु परीक्षणों ने भारत को एक शक्तिशाली और उत्तरदायी राष्ट्र के रूप में विश्व के सामने प्रस्तुत किया। 2003 में भारत ने अपना परमाणु सिद्धांत को भी प्रस्तुत किया। भारत के परमाणु सिद्धांत में दो महत्वपूर्ण पहलू हैं। परमाणु सिद्धांत में अनिवार्य रूप से “विश्वसनीय न्यूनतम निवारक” और “पहले उपयोग नहीं” (नो फर्स्ट यूज) की नीति है। भारत की परमाणु सिद्धांत के अनुसार परमाणु हथियार केवल विरोधी को रोकने के लिए है और भारत कभी भी किसी देश के खिलाफ पहले परमाणु हथियारों का उपयोग कभी नहीं करेगा। इस प्रकार परमाणु संपन्न देश बनने के बाद भी भारत ने एक मजबूत नैतिक स्थिति बनाए रखी।

भारत की परमाणु नीति के कारण, विदेश नीति के विमर्श में एक तनाव देखा जा सकता है। उत्तर औपनिवेशिक राज्य होने के कारण भारत को एक ओर जहाँ गरीबी उन्मूलन और विकास कार्यक्रम के लिए अपने सभी संसाधनों का उपयोग करने की दुविधा का सामना करना पड़ा वहीं दूसरी ओर भारत को अपने लोगों और संप्रभुता की रक्षा करने में सक्षम एक मजबूत राष्ट्र के रूप में खुद को प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी। भारत पश्चिमी राष्ट्रों के उस समझ को चुनौती देना चाहता था, जिसमें वे भारत को कमजोर और गरीब राष्ट्र के रूप में देखते थे। परमाणु परीक्षण करने से भारत ने न केवल पश्चिमी राष्ट्रों के वर्चस्व को चुनौती दी, बल्कि खुद को शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में प्रदर्शित भी किया।



भारत की विदेश नीति के व्यवहार की जटिलताओं ने उत्तर औपनिवेशिक राज्य से एक महत्वाकांक्षी वैश्विक शक्ति के रूप में क्रमिक प्रगति दिखाई है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था, सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों, विचारधारा और विचार प्रणाली, और ज्ञान निर्माण प्रक्रिया में पश्चिमी आधिपत्य को चुनौती देने के लिए भारत के दृढ़ संकल्प ने एक नई विश्व व्यवस्था के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देने की भारत की आकांक्षा को प्रस्तावित किया है। भारत की वैश्विक व्यवस्था की दर्शन, संसाधनों के समान वितरण, आपसी सम्मान और सहयोग, गैर-शोषक वैश्विक संबंध और शांति के सिद्धांतों पर आधारित है। विश्व में भारत की परमाणु प्रतिष्ठा ने सैन्य मामलों तथा विज्ञान और प्रौद्योगिकी में भी भारत की क्षमता को प्रदर्शित किया है। अन्य महत्वपूर्ण कारक जो भारत को वैश्विक व्यवस्था में एक प्रतिष्ठित स्थान की आकांक्षा करने में सहायता करती है तो वो है विश्व अर्थव्यवस्था में भारत का उदय। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में किसी भी देश की प्रतिष्ठा न केवल सैन्य शक्ति से बल्कि उसकी आर्थिक शक्ति से भी निर्धारित होती है क्योंकि यह अर्थव्यवस्था ही है, जो सैन्य कौशल को बनाए रखती है और जनसंख्या को भी स्वस्थ और समृद्ध रखती है।

2.7 आर्थिक नीति

भारत लंबे समय से कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था रहा है। ब्रिटिश शासन के दौरान आर्थिक शोषण ने भारत को गरीब बना दिया था। उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया ने भारत की आर्थिक संरचना को तोड़ दिया था। इसलिए स्वतंत्रता के बाद भारत ने कृषि उत्पादन पर ध्यान केंद्रित किया। कृषि के अलावा भारत ने औद्योगिक उत्पादन पर भी ध्यान दिया। कृषि और उद्योग क्षेत्रों को एक योजना अर्थव्यवस्था के अंतर्गत विकसित किया गया था, जिससे भारत को अपनी गरीबी को एक सार्थक स्तर तक कम करने में सहायता मिली। कृषि कार्यों को बढ़ावा देने के लिए बड़े बाँधों का निर्माण किया गया था। इन बाँधों ने एक बहुउद्देशीय परियोजना के रूप में कार्य किये, जिसके फलस्वरूप बिजली का उत्पादन हुआ और सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध हुआ। भारत ने लौह और इस्पात के उत्पादन के लिए खनिज आधारित उद्योगों का भी विकास किया। जैसे-जैसे भारत विकास की ओर बढ़ रहा था, उसकी केंद्रीय नियंत्रित नियोजित अर्थव्यवस्था ने अपनी सीमाएँ दिखानी शुरू कर दीं। परिणामस्वरूप भारत का सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की विकास दर लंबे समय तक लगभग स्थिर रही। 1950 से 1980 तक सकल घरेलू उत्पाद में केवल 3.5 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई। इस कम वृद्धि दर ने यह भी संकेत दिया कि आर्थिक नीति की पुनर्रचना की आवश्यकता है।



अस्सी के दशक के उत्तरार्द्ध में राजनीतिक अस्थिरता और आर्थिक गतिरोध के कारण भारत की आर्थिक स्थिति काफी खराब हो गई थी। आर्थिक नीति में प्रतिस्पर्धा और नवाचार की कमी के कारण आर्थिक गिरावट आई। 1991 में आर्थिक रूप से भारत इतना कमजोर हो गया था कि उसके पास तीन सप्ताह के लिए ही आयात करने के लिए विदेशी मुद्रा भंडार थे। यह प्रकरण भारत की आर्थिक नीति में एक गंभीर चुनौती बन गया। भारत के लिए यह वह समय था, जब वह अपनी आर्थिक नीति को पुनःनिर्देशित कर सकता था। भारत ने वित्तीय मदद के लिए अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ/IMF) से संपर्क किया। आईएमएफ भारत की सहायता करने के लिए इस शर्त पर सहमत हुआ कि भारत अपने अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन लाये। भारत संरचनात्मक परिवर्तन करने के लिए तैयार था। इसलिए 1991 में भारत ने अपनी अर्थव्यवस्था में उदारीकरण लाने की घोषणा की। परिणामस्वरूप भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों (एमएनसी) को व्यापार करने की अनुमति दी गई तथा निजी व्यक्तियों को भी बड़े उद्योग चलाने की अनुमति दी गई।

1991 के आर्थिक परिवर्तन ने भारत के लिए सकारात्मक परिणाम लाए। भारत की अर्थव्यवस्था में वृद्धि होने लगी। 1992 से 2008 तक औसत सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 6.6 प्रतिशत और 2009 से 2018 तक 7.3 प्रतिशत रही। वर्ष 2022 में भारत की जीडीपी लगभग 3.25 ट्रिलियन डॉलर और विदेशी मुद्रा भंडार 619 बिलियन डॉलर है। भारत एक विशाल अर्थव्यवस्था के रूप में विकसित हुआ है, जो विश्व अर्थव्यवस्था में छठे स्थान पर है। अर्थव्यवस्था में इस विशाल छलाँग ने भारत की प्राथमिकताओं को नया रूप दिया है और भारत की वैश्विक आकांक्षा को पुनः परिभाषित किया है। 2001 में, भारत की विदेश नीति के एक विशेषज्ञ, एशले टेलिस ने कहा था कि यदि भारत 7 प्रतिशत या उससे अधिक की दर से वृद्धि करता है तो यह एशियाई भू-राजनीति में एक प्रभावी ध्रुव और दुनिया में एक महत्वपूर्ण देश बन जाएगा (देखें बारू 2002: 2585)।

भारत की आर्थिक नीति की मजबूती का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 2008 के वित्तीय संकट के दौरान भारत पर कोई गंभीर असर नहीं पड़ा था। इसके अलावा भारत ने आर्थिक सहायता लेना बंद कर दिया है और इसके विपरीत जरूरतमंद देशों को आर्थिक सहायता देना शुरू कर दिया है। 2004 की सुनामी में भी भारत ने सुनामी प्रभावित देशों की सहायता में अग्रणी भूमिका निभाई थी। भारत ने कई देशों को आर्थिक सहायता भी प्रदान की है, जिन्होंने सहायता माँगी है।

भारत की आर्थिक नीति अब भारत को इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं से लेकर भारी मशीन निर्माण तक, कई वस्तुओं का विनिर्माण केंद्र बनाने पर केंद्रित है। हाल के वर्षों में भारत ने अपनी तेल रिफाइनरी



क्षमता भी विकसित की है और स्नेहक (लुब्रीकेंट) और अन्य हाइड्रोकार्बन उत्पादों का महत्वपूर्ण आपूर्तिकर्ता बन गया है। भारत ने अपने सॉफ्टवेयर उद्योग में उत्कृष्टता के कारण अन्य विकासशील देशों को भी तकनीकी सहायता प्रदान की है।

जैसा कि भारत एक महत्वपूर्ण वैश्विक बाजार में परिवर्तित होता गया, भारत वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ भी जुड़ा चला गया। इस प्रक्रिया ने भारत को आर्थिक मामलों में बहुत आवश्यक उत्तोलन प्रदान किया है। अब भारत वित्त पूँजी के प्रवाह को नियंत्रित कर सकता है और वैश्विक अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर सकता है। भारत 2026 तक पाँच ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था बनने की उम्मीद कर रहा है (पीटीआई 2022)। अगर ऐसे हुआ तो भारत दुनिया की तीसरी सबसे बड़ा अर्थव्यवस्था बन जायेगा (इबिड)। हाल के वर्षों में दुनिया में भारत की प्रतिष्ठा में व्यापक वृद्धि हुई है।

2.8 दक्षिण एशिया में भारत की भूमिका

भारत की विदेश नीति में दक्षिण एशिया क्षेत्र का एक विशिष्ट स्थान है। एक पारंपरिक और ऐतिहासिक संबंध होने के कारण, भारत दक्षिण एशियाई देशों के साथ सांस्कृतिक, भाषाई और धार्मिक संबंध साझा करता है। 1947 तक भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश ब्रिटिश शासन के अधीन थे। इन देशों ने संयुक्त रूप से स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया था। इन राष्ट्रों ने औपनिवेशिक शासन काल में एक समान शोषण का अनुभव किया है। लेकिन दक्षिण एशिया क्षेत्र का सबसे महत्वपूर्ण पहलू साझा सभ्यतागत मूल्य है। चाहे वो नेपाल हो, भूटान हो या श्रीलंका, दक्षिण एशिया क्षेत्र साझी भावनात्मक विरासत से जुड़ा हुआ है।

भारत ने अपनी स्वतंत्रता के बाद से ही ऐतिहासिक संबंधों और पारस्परिक रूप से स्वीकार्य मूल्यों के आधार पर दक्षिण एशियाई क्षेत्र के लिए एक समान पहचान बनाने की कोशिश की है। भारत ने क्षेत्रीय एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 2014 में भारत ने अर्थव्यवस्था, प्रौद्योगिकी, शिक्षा, पर्यावरण और डिजिटल कनेक्टिविटी के क्षेत्र में एक सहयोगी साझेदारी विकसित करने के उद्देश्य से नेबरहुड फर्स्ट नीति की शुरुआत की। इस नीति के अंतर्गत भारत ने दक्षिण एशियाई देशों को सहायता प्रदान की है।

भारत ने आर्थिक संबंधों को उच्च प्राथमिकता दी है। 2008 में दक्षिण एशिया में भारत का



क्षेत्रीय व्यापार लगभग 13.5 बिलियन डॉलर था, जो 2018 में बढ़कर 36 बिलियन डॉलर हो गया। भारतीय निर्यात का अधिकांश हिस्सा बांग्लादेश, श्रीलंका और नेपाल जाता है। दक्षिण एशिया क्षेत्र में भारत का व्यापार, भारत के वैश्विक व्यापार का लगभग 4 प्रतिशत है। दक्षिण एशिया में व्यापारिक संबंधों में सुधार की प्रबल संभावना है। व्यापार संबंधों को बढ़ावा देने के लिए भारत ने दक्षिण एशियाई देशों के साथ कई व्यापार समझौते किए हैं। 1994 में भारत ने दक्षिण एशियाई वरीयता व्यापार समझौता (SAPTA) पर हस्ताक्षर किए और 2004 में भारत ने दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार क्षेत्र (SAFTA) पर हस्ताक्षर किए।

दक्षिण एशिया क्षेत्र में भारत की मुख्य भूमिका सुरक्षा प्रदाता और क्षेत्रीय संतुलनकर्ता की है। भारत दक्षिण एशिया क्षेत्र को और ज्यादा एकीकृत करने का प्रयास कर रहा है। भारत, दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क), बंगाल की खाड़ी बहु-क्षेत्रीय तकनीकी और आर्थिक सहयोग पहल (बिम्सटेक) और बांग्लादेश, भूटान, भारत, नेपाल (बीबीआईएन) पहल, जैसे क्षेत्रीय संगठनों को बढ़ावा देता है। दक्षिण एशिया में भौगोलिक क्षेत्र और अर्थव्यवस्था जैसे पहलुओं में सबसे बड़ा देश होने के कारण भारत ने इस क्षेत्र को आर्थिक और बुनियादी ढाँचा निर्माण में सहायता प्रदान की है। COVID-19 महामारी के दौरान इस क्षेत्र को वैक्सीन और अन्य चिकित्सा सहायता प्रदान करने में भारत की भूमिका उल्लेखनीय रही है।

चूँकि भारत दक्षिण एशियाई देशों के साथ ऐतिहासिक संबंध साझा करता है, इसलिए इस क्षेत्र से संबंधित मुद्दों पर भारत का विशेष ध्यान रहता है। भारत के बड़े आकार और शक्ति के बावजूद भारत ने कभी भी इस क्षेत्र में राजनीतिक या सामाजिक मुद्दों पर हावी होने का प्रयास नहीं किया है। भारत कभी भी आधिपत्य वाला देश बनने का इरादा नहीं रखता है (चट्टोपाध्याय 2011: 2)। भारत दक्षिण एशियाई देशों की सहायता और सहयोग करने के लिए हमेशा प्रतिबद्ध रहता है।

2.9 अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत का महत्व एवं महत्वाकांक्षा

वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में उभरता भारत एक अलग भारत है। समकालीन भारत ज्यादा आत्मविश्वासी और आत्मनिर्भर है। यह जोखिम लेने और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए तैयार है। भारत यह मानते हुए आया है कि उसका एक महान शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में स्थान प्राप्त करना तय है (ओग्डेन 2011: 4)। जहाँ 1991 में आर्थिक उदारीकरण ने



अर्थव्यवस्था को आवश्यक गति प्रदान की, वहीं 1998 के परमाणु परीक्षणों ने भारत को वैश्विक मंच पर पहुँचा दिया।

संयुक्त राज्य अमेरिका के तत्वाधान में, जहाँ विश्व समुदाय ने भारत पर कई प्रतिबंध लगाए, भारत ने प्रतिबंधों से निपटने और अपने द्विपक्षीय संबंधों को सुधारने के लिए एक सशक्त कूटनीति की शुरुआत की। भारत के कूटनीतिक प्रयासों और अपनी आर्थिक और सैन्य शक्ति का प्रदर्शन करने की क्षमता के कारण, भारत विश्व की राय को अपने पक्ष में करने में सफल रहा। यहाँ तक कि “संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी भारत की अर्थव्यवस्था, परमाणु क्षमताओं, स्थिर लोकतंत्र और बड़े मध्यम वर्ग के संदर्भ में भारत के नए चरित्र को स्वीकार करना आरंभ कर दिया” (इबिड : 10)। जसवंत सिंह और स्ट्रोब टैलबोट के बीच वार्ता के लंबे दौर ने भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच भ्रान्ति को समाप्त करने में प्रमुख भूमिका निभाई। इस वार्ता ने विश्व में भारत की छवि को बदलने में भी सहायता की। भारत विश्व को यह समझाने में सक्षम हुआ कि भारत एक उत्तरदायी परमाणु राष्ट्र है और वैश्विक मुद्दों में एक प्रमुख भूमिका निभाने के लिए तैयार है।

भारत ने चीन के साथ भी अपने संबंधों में सुधार किया है। चीन के साथ भारत के संबंध अब साझा भागीदारी और आपसी सम्मान पर आधारित हैं। भारत तेजी से सैन्य और आर्थिक क्षेत्र में चीन के साथ बराबरी कर रहा है। 2020 के दौरान गलवान, लद्दाख में सीमा पर हुई झड़पों के दौरान, भारत अपने क्षेत्र में चीन की घुसपैठ को विफल करने में सफल रहा। चीन द्वारा भारत की घेराबंदी (एनसरक्लमेंट) को तोड़ने में भी भारत सफल रहा है। इसका एक उदाहरण भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान और ऑस्ट्रेलिया के बीच 2007 में चतुर्भुज सुरक्षा वार्ता (क्वाड्रीलैटरल सिक्योरिटी डायलॉग) या क्वाड (QSD) की शुरुआत है।

भारत ने अपनी आर्थिक और सैन्य शक्ति के कारण दुनिया में सम्मान प्राप्त किया है। भारत अब कई बहुपक्षीय संगठनों का सदस्य है और इन संगठनों की नीतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत के विचार अब विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में भी सुनी जाती है। भारत ब्रिक्स (BRICS) (ब्राजील, रूस, भारत, चीन, दक्षिण अफ्रीका) संवाद, शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ/SCO) और पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन (ईएएस/ EAS) जैसे बहुपक्षीय मंचों में भी सक्रिय रूप से भाग लेता है। भारत संयुक्त राष्ट्र की नीतियों को स्वरूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और साथ ही संयुक्त राष्ट्र शांति मिशन में भी प्रमुखता से योगदान करता है। भारत जलवायु परिवर्तन, वैश्विक



गरीबी उन्मूलन और महामारी की रोकथाम जैसे ज्वलंत समस्याओं से निराकरण के उपायों से संबंधित नीतियों को स्वरूप देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत न ही सिर्फ आर्थिक और तकनीकी रूप से सहायता करता है बल्कि वो विभिन्न कार्यों के लिए श्रमिक, कर्मचारी और विशेषज्ञ को भी उपलब्ध कराता है।

हाल के वर्षों में भारत की भूमिका कई क्षेत्रों में बढ़ी है। बाहरी अंतरिक्ष अन्वेषण हो या टीकों का निर्माण, भारत ने न केवल दुनिया में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई है, बल्कि मानव सेवा में भी अग्रणी भूमिका निभाई है। विश्व समुदाय ने भी विश्व के विकास और वैश्विक कूटनीति में भारत की भूमिका और योगदान को सराहा है।

2.10 उपसंहार

भारत का इतिहास, परंपरा, संस्कृति और सभ्यतागत लोकाचार भारत की विदेश नीति को स्वरूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वैश्विक शक्ति की आकांक्षा इस गहरे विचार की अनुभूति है कि भारत विश्व में एक शक्तिशाली देश था और भारत को अपने अतीत के गौरव को प्राप्त करना चाहिए। भारत को भी लगता है कि उसके पास अपने सपने को पूरा करने की पूरी क्षमता है। उत्तर औपनिवेशिक विशेषता भारत को अपनी जड़ों से जुड़े रहने में सहायता करती है और साथ ही तकनीकी और आर्थिक रूप से संचालित आधुनिक दुनिया में कूटनीतिक लक्ष्य प्राप्त करने में भी सहायता करती है। शक्तिशाली बनने की भारत की आकांक्षा आधिपत्यपूर्ण उद्देश्य को पूरा करने की नहीं है, बल्कि वैश्विक शांति और विकास में योगदान करने की है। भारत विश्व में आपसी सहयोग और संसाधनों के समान वितरण की कामना करता है। भारत यह चाहता है कि विश्व व्यवस्था गैर-शोषक और गैर-आधिपत्यपूर्ण होनी चाहिए। भारत की विदेश नीति मूल्य आधारित और सहयोगात्मक प्रकृति की है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों में भारत की बढ़ती भूमिका ने विश्व व्यवस्था को अधिक नैतिक और सहकारी बना दिया है। विश्व में भारत का उदय अंतर्राष्ट्रीय संबंध में एक सुखद घटना है।

2.11 अभ्यास प्रश्न

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

a. गुटनिरपेक्ष आंदोलन की औपचारिक रूप से स्थापना कब हुई थी?

(i) 1960; (ii) 1961; (iii) 1962



b. “पहले उपयोग नहीं” (नो फर्स्ट यूज) का अर्थ है

(i) कभी भी परमाणु हथियारों का प्रयोग न करें; (ii) परमाणु हथियारों का उपयोग करने में प्रथम बनें; (iii) पहले परमाणु हथियारों का उपयोग न करें।

2. भारत की विदेश नीति में नैतिक मूल्यों की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
3. भारत की विदेश नीति पर परमाणु परीक्षणों के प्रभाव का परीक्षण कीजिए।
4. भारत की विदेश नीति को स्वरूप देने में अर्थव्यवस्था की भूमिका की विवेचना कीजिए।
5. अंतर्राष्ट्रीय संबंध में भारत की राजनयिक स्थिति का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

2.12 संदर्भ-सूची

- Ashcroft, Bill, Gareth Griffiths and Helen Tiffin (2002), *The Empire Writes Back: Theory and practice in post-colonial literatures*, Routledge: London.
- Baru, Sanjay (2002), “Strategic Consequences of India’s Economic Performance”, *Economic and Political Weekly*, Vol. 37, No. 26, pp. 2583-2592.
- Chattopadhyay, Pratip (2011), “The Politics of India’s Neighbourhood Policy in South Asia”, *South Asian Survey*, Vol. 18, No. 1, pp. 93–108.
- Ogden, Chris (2011), “International ‘aspirations’ of a rising power”, *Handbook of India’s International Relations*, edited by David Scott, Routledge: London.
- Gandhi, Leela (1998), *Postcolonial Theory: A critical introduction*, Allen & Unwin: Australia.
- Ganguly, Sumit (1999), “India’s Pathway to Pokhran II: The Prospects and Sources of New Delhi’s Nuclear Weapons Program” *International Security*, Vol. 23, No. 4, pp. 148-177.
- PTI (2022), “India on course to become USD 5 trillion economy by FY26: CEA”, *The Economic Times*, 01 February 2022, accessed 07 April 2022, URL: <https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/finance/india-on-course-to-become-usd-5-trillion-economy-by-fy26-cea/articleshow/89281393.cms?from=mdr>
- Ratnam, Perala (1970), ‘Non-Alignment in the Seventies’, *India Quarterly: A Journal of International Affairs*, pp. 258-268.
- Roy, Kaushik (2007), “Just and Unjust War in Hindu Philosophy”, *Journal of*



Military Ethics, Vol. 6, No. 3, pp. 232- 245.

- Said, Edward W. (2003), *Orientalism*, Penguin: London.
- Shahi, Deepshikha and Gennaro Ascione (2015), “Rethinking the absence of post-Western International Relations theory in India: ‘Advaitic monism’ as an alternative epistemological resource”, *European Journal of International Relations*, pp.1-22.

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi



**Department of Distance and Continuing Education
University of Delhi**